

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180483

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—556—13-7-71—4,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83 Accession No. H 1518

Author P 19 M पालिकर, राजनी

Title

मोम के मोती

This book should be returned on or before the date last marked below.

“यह क्या फालतू बात है, तुमने अभी तक ~~किस~~ भी नहीं पूछी। मुझे साँस तो लेने दो। सेठ साहब से अभी मुझे क्षमा माँगनी है। यह मैं रंग में भंग कर रहा हूँ।”

सेठ धनपति लाखों रुपयों के स्वामी होते हुए भी अफसरों से दबते थे। मुस्कराते हुए बोले—“रंग में भंग कैसा? माया न जाने आज उदास क्यों थी। आपको देख कर प्रसन्न हो उठी है।”

मेजर कबाड के मुख पर एक घाव का निशान था, जो भयंकर काली मूछों की पृष्ठभूमि में कभी कभी बहुत भयंकर लगता। अब भी सेठ की बात सुन कर कबाड के जबड़े फैल गये। वह घाव का निशान चमकने लगा। कबाड ने मिठाई का एक बड़ा सा टुकड़ा उठाया और मुँह में रख लिया।

“माया, चुप क्यों हो गई?”

“न जाने आज क्यों अन्यमनस्क सी है”—सेठ जी बोले।

“माया, यह जिन्दगी बहुत छोटी सी है।”

“उसके लिए, जिसके जीवन में ~~दुःख~~ हो और कोई दुःख तथा अभाव न हो।” माया ने गम्भीरता से उत्तर दिया।

“यह क्या? तुम तो वर्षा में निकली धूप की तरह रंग बदलती हो”—मेजर कबाड ने मुस्कराते हुए कहा।

“बहुत खूब कहा दोस्त, जीते रहो।” सेठ साहब ने कबाड की पीठ थपथपाई।

“तुम्हें कौन सा अभाव है माया? खुशियाँ तुम्हारे कदम चूमती हैं। तुम उन्हें रौंदती आगे बढ़ जाती हो।”

“क्या लाख रुपये की बात कही मेजर!” सेठ ने माया की ओर देखा।

“सच सेठ साहब, बात आपको लाख रुपये की लगी ... तकलीफ़ कीजिये न, एक लाख रुपये का चैक काट दीजिये। उधार मत रखिये।” सेठ साहब और माया दोनों हँसने लगे। कबाड स्वयं भी ‘हो हो’ करके हँस दिया।

“तुम बड़े होशियार हो कबाड । मेरी आड़ लेकर एक लाख का सौदा तय कर लिया और मुझे बोलने भी नहीं दिया ।”—माया ने दूर देखते हुये कहा । वहाँ मधुकर बैठा, धीरे धीरे चाय की चुसकियाँ ले रहा था । मधुकर का गोरा रंग बिजली के प्रकाश सा तीव्र लग रहा था । गाढ़े नीले रंग का गरम सूट तिस पर लाल टाई ... माया से वह आँख भी नहीं मिलाता । यह माया की कितनी बड़ी अवहेलना है । सेठ धनपति को वह माया के साथ कितनी बार देख चुका है, तो आज किस बात की नवीनता है जो मधुकर को अखर रही है ।

मधुकर माया के उतने ही निकट है जितना सेठ धनपति दूर—इस समय चाहे वह उस से दूर बैठा है । माया की दृष्टि बार बार मधुकर की ओर उठती और पुनः नीची हो जाती ।

“चलो आज आप लोग मेरे साथ क्लब चलो” मेजर कबाड ने जरा मुस्कराते हुए कहा ।

सेठ धनपति माया की अन्यमनस्कता से घबरा उठे थे । उन्हें पहले से ही भय था कहीं माया होस्टल लौटने के लिए न कहे । कबाड के प्रस्ताव से वह सहमत थे । माया का मन उचाट है, चलो क्लब में बुरा नहीं रहेगा ठीक ही है । कबाड स्त्रियों के विषय में बहुत अनुभव रखता था । उसे यह समझते देर न लगी कि आज कोयल कूक नहीं रही, सिमटी सी बैठी है—जैसे उसके पर भीग गये हो ।

“माया, मेरी सलाह मानो तो चलो यहाँ से उठे ।”

“क्यों ? आज यह जगह आपको पसन्द नहीं आ रही ?”

“नहीं । मुझे तो वह वीरान जगह भी पसन्द होगी जहाँ तुम्हारा साथ मिले । मैं तो यहाँ भी प्रसन्न हूँ, और क्लब में भी प्रसन्न रहूँगा ।”

“मेरे ख्याल में आज दुश्मनों की तबीयत कुछ खराब है ।”

माया खिलखिला कर हंस दी ।

माया के कहकहे से मधुकर भी चौंका, और इस बार जो माया और मधुकर की आँखें मिली और दोनों दूसरी ओर देखने लगे तो कबाड

बोला—

“आज मधुकर यहाँ कैसे ? वह तो इस जगह को पसन्द नहीं करता था ।”

सेठ साहब का ध्यान अभी मधुकर की ओर नहीं गया था । उन्हें वह वैसे ही बहुत पसन्द न था और फिर जब माया मधुकर को देखती तो उसके साथ चल देती, उस समय तो वह ईर्ष्या से जलकर बिल्कुल राख ही हो जाते । माया के निवास स्थान पर इनकी मुलाकात कई बार हो चुकी है । माया ने लापरवाही से अपना बटुआ उठाया और कुरसी से प्रायः उछलती सी बोली—

“चलिये, क्लब चलें ।”

न जाने माया का मन विद्रोह से क्यों भर उठा । उसने मधुकर की ओर एक सरसरी दृष्टि से देखा और होटल के बाहर चली आई । कबाड ने भी सिगरेट का धुआँ आसमान की ओर फेंकते हुए, माया का पीछा किया । सेठ साहब ने ‘बेयरा’ के हाथ में बिल देख कर एक दस रुपये का नोट तश्तरी में रख दिया, और आप बाहर की ओर चले । एक बार भी पीछे नहीं देखा, हिसाब करने की कोशिश नहीं की । सदैव ऐसा ही होता—वह जितने रुपये ‘बेयरा’ को देकर जाते, कभी पूछा नहीं वह कहां गये, बिल कितना था । चार रुपये के बिल पर छः रुपये का ‘टिप’ देने वाले बेवकूफ इस महंगाई में बहुत कम आते । मधुकर ने भी इन सबको जाते देखा । उसके हृदय से एक उछवास निकली । उसने सिगरेट का कश खेंचा और अपने पास मेज पर रखे अखबार को पढ़ने लगा । माया सेठ धनपति के साथ उठती-बैठती है, खाना-पीना होता है, यह वह सब जानता है, परन्तु वह ऐसे एक रेस्तरां में इतनी स्वतंत्रता से उनसे मिलती जुलती है, यह वह नहीं जानता था । माया को आज तीन वर्ष से वह जानता है, तब भी वह यह नहीं जान पाया ।

कभी कभी बात करते माया घड़ी की ओर देखती और कह देती—
“अब समय हो गया, मैं जा रही हूँ ... मेरा कहीं और ‘अपायण्टमेंट’ है,

मुझे आवश्यक जाना है, जाना ही होगा।” मधुकर ने उससे कभी यह प्रश्न नहीं पूछा—तुम कहा जा रही हो, अभी कहाँ से आई थी। प्रायः उनकी मुलाकात तो मधुकर के दफ्तर में ही होती जहाँ माया अपनी फ़र्म के विज्ञापन लेकर आती। कभी कभी बाहर भी मिल लेते यमुना किनारे ... या माया के होस्टल में।

मधुकर की सास वहाँ बैठे बैठे घुटने लगी। माया कितनी प्रसन्न थी। उस कबाड के साथ कितनी हँस-हँस कर बातें कर रही थी। कबाड का घृणित मुख भी आज उसे पसन्द है। इसी कबाड की खिल्ली वह कितनी बार मधुकर के सामने उड़ा चुकी है। आज उसी के साथ उठ कर चली गयी है। मधुकर का कल्पनाशील मस्तिष्क चौखला उठा। उसके सामने कई प्रकार के चित्र आने लगे ... सेठ साहब की कार में, वह ड्राइवर के साथ अकेले बैठे होंगे और माया कबाड के साथ उसकी कार में। इसी कल्पना में उसने शराब मँगवा ली। एक साथ दो पेग। नाचवृन्द पर कोई बड़ी करुण गत बज रही थी।

: २ :

माया रात को साढ़े ग्यारह बजे होस्टल पहुँची तो कला अभी एक पुस्तक पढ़ रही थी।

“जीजी, बड़ी देर कर दी।”

“हाँ कला, कुछ देर हो ही गई। तुम भी तो अभी पढ़ ही रही हो, सो क्यों नहीं गई?”

“जीजी, आज हमारे आश्रम में एक कश्मीर की लड़की आई है, चम्पा। उसे भगा लिया गया था। उसका एक नन्हा भी है। चार वर्ष पहले उसे भारतीय पुलिस छुड़ा कर लाई थी, फिर उसका पति मिल गया था। वह उसे अपने साथ ले गया था।”

“तो आज वह तुम्हारे आश्रम में कैसे आ गई?” माया ने अपना

झड़ा खोलते हुए पूछा ।

“जीजी, उसकी बड़ी करुण कहानी है । वह चम्पा की कली सी सुन्दर, और सुकुमार है । उसकी बड़ी बड़ी आँखें और कटीली भौएँ ... काश्मीरी सौंदर्य का परिचय देती हैं । पर बिचारी का पति इतना बुरा निकला कि उसने चम्पा का जीवन दूभर बना दिया । हर बात में ताना देता था, ‘तुम कबालियो द्वारा भगा ली गई थी । तुम उनके यहाँ रह कर आई हो, तुम्हारा कुछ धर्म नहीं है । तुम्हें भारत आना ही नहीं चाहिये था । तुम वही क्यों न रह गई या फिर मर क्यों न गई ।’

“बिचारी पुरुष के व्यंगों का शिकार बनी ।”

कला ने कॉफी के लिये पानी हीटर पर चढ़ाते हुए कहा—“हम लोगो के पास बिन्दिया न होती तो मैं चम्पा को ले आती । वह बहुत ही सुन्दर है, जीजी ।”

माया खिलखिला दी ।

“क्यों, तुम इस छोटे से कमरे को भी आश्रम का रूप देना चाहती हो ?”

“नहीं जीजी, मैं तो केवल उसे ‘क्वार्टरों’ में रखने की सोच रही थी ।”

“क्यों, वहाँ आश्रम में क्या कठिनाई है ?”

“कुछ नहीं ... उसे भर्ती करने में जरा मेहनत करनी पड़ेगी । वह एक बार विस्थापित स्त्रियों के कैम्प में जालन्धर रह चुकी है । वही से उसका पति उसे घर ले गया था । अब फिर घर से निकाल दिया है ।”

“ओह ! यह पुरुष ... सब नीच होते हैं ।”

“हाँ जीजी, नारी की मनोव्यथा नहीं समझते ।”

“नारी जान बूझ कर पुरुषों पर बार बार बलि जाती है ... यही उसकी भूल है ।” माया का मुख तमतमा रहा था । मधुकर का व्यवहार उसकी आँखों के सामने घूम रहा था ।

“क्षमा करना जीजी, तुम भी तो किसी पुरुष के साथ बाहर थी।”

माया ने क़हक़हा लगा दिया। कला हतप्रभ रह गई। उसने भेपते हुए ऐसी बात माया से कही थी कि माया भी उससे भेंप जाए। परन्तु माया भेंपने के स्थान पर खिलखिला दी थी।

“आज कला अपनी जीजी पर प्रहार कर रही है। तुम क्या समझो तुम्हारी जीजी को क्या दुःख है, तुम्हारी जीजी कैसे जीवन की नाव खे रही है।” माया की आँखें गीली हो गईं।

“जीजी, मैं काँफी देती हूँ।”

माया ने उत्तर नहीं दिया। वह लेटी लेटी कुछ सोचने लगी। इस होस्टल में पुरुष भी रह सकते थे, स्त्रियाँ भी। यह केवल ‘कामकाजी’ लड़कियों के लिये नहीं बना है। माया पहले केवल लड़कियों के ही एक होस्टल में रहती थी, जहाँ खाना भी होस्टल में मिलता था (और केवल लड़कियाँ रहती थी)। वहाँ बाहर जाने की स्वतंत्रता सप्ताह में केवल दो बार थी। किसी भी दिन यदि माया रात्रि के साढ़े ग्यारह बजे बाद लौटती तो उसे मधुआ की हथेली पर एक चमचमाता हुआ चाँदी का रुपया रखना पड़ता। नोट से उस गंवार की तुष्टि ही न होती थी। वह खूखार जानवर से अधिक भयंकर था। बड़ा सा लट्टु लिये खड़ा रहता, कोई भी लड़की देर से आती, तो वह केवल एक ही शब्द कहना जानता था—‘खबरदार’। यदि कोई लड़की सुनी अनसुनी करके पेड़ और झाड़ियों के अन्धकार में छिप जाना चाहती, तो ‘...’ कैसे हो सकता था, क्योंकि मधुआ की आँखें बिल्ली की आँखों से भी तेज थी। वह अन्धकार में भी देख लेता था।

माया का परिचय कला से हुआ। वह देहली पहली ही बार आई थी, और उसी लड़कियों के होस्टल में रहने आई थी। उसे माया के कमरे में रखा गया। कला बड़े घर की सुन्दर गोरी सी लड़की है। बन्धन और नियन्त्रण से बहुत दूर। उसे होस्टल के भोजन से दुर्गन्ध आती, मतली हो जाती। वह बार बार माया से कहती—‘माया जीजी, यह

खाना मुझसे नहीं खाया जाएगा। ओह ! कैसी जगह है यह ? जाने तुम लोग यहाँ कैसे रहते हो ?

माया ने हँसते हुए पूछा था—

“क्यों, क्या हुआ रानी जी को ? माना आप डाक्टर हैं।”

“जीजी, यहाँ लड़कियाँ कितनी असभ्य हैं।”

माया के दिल में ‘धक्’... किसी ने पत्थर फेंका हो। लड़कियाँ असभ्य हैं ? माया भी असभ्य है ? कला की तरह होस्टल में रहने वाली इन सब लड़कियों के पिता किसी बैंक के मैनेजिंग डायरेक्टर तो हैं नहीं और न ही माया मन की मौज के लिये नौकरी करती है। मीनाक्षी कन्याकुमारी से देहली आई है। उसके घर में एक बूढ़ी माँ है और तीन छोटी बहनें। रोहिणी और सुखदा बिहार से आई हैं। नीला और वनिता, मध्यप्रदेश से। माया किस किस का नाम गिनाये। होस्टल में पाँच सौ लड़की रहती हैं।

“जीजी, चुप क्यों हो गई ?”

माया पिछले तीन वर्ष से यहाँ रहती है। उसने एक दिन भी अनुभव नहीं किया कि होस्टल के खाने में दुर्गन्ध आती है। माँ के नरम नरम फुलके और इस खाने में बड़ा अन्तर था, परन्तु वह भी माया ने एक सप्ताह से अधिक न जाना था। माया घर से रुपया कमाने आई थी। वह रुपया खर्च करने ही न आई थी। उसके पिता दो वर्ष बीमार रहे थे। उनकी बीमारी के समय माया मैट्रिक की परीक्षा दे ही चुकी थी कि उसके पिता के पेट में दर्द शुरू हुआ, इतना बढ़ गया कि उन्हें खाट पकड़नी पड़ी। डाक्टर बुलाया गया। उसने आते ही अंतर्द्वियों का टी०बी० बतलाया। पूर्ण आराम मिलना चाहिये। दवा नियमित रूप से होनी चाहिए। पिता स्कूल मास्टर थे और उसी से हैडमास्टर बने थे। बीमारी शुरू होने के समय उनकी आयु चालीस वर्ष की थी। ऐसी दशा में घर में माँ के जेवरों को छोड़ कर क्या पूँजी हो सकती थी। मैट्रिक की परीक्षा दूसरे दर्जे में पास कर लेने पर पिता

जी के कहने में माया को कालिज में भर्ती करवा दिया गया। उसने इंटर भी पास कर लिया। पिता की बीमारी न गई। माँ के भाल पर चिन्ता की रेखाएँ जो गहरी उभरी वह स्थाई होकर रह गई। पिता का स्वर्गवास हो गया। माँ के जेवर एक एक करके सब पिता की बीमारी में बिक चुके थे। उनकी मृत्यु ने घर का रहा सहा आधार भी छीन लिया था। घर में न रुपया था, न पैसा। पिता के बीमे के रुपये लड़ भगड़कर किसी तरह दो हजार माया की माँ ने बीमा कम्पनी में ले लिये थे। वह भी धीरे धीरे आटा दाल जुटाने में खर्च हो गये थे।

माँ के भुके कन्धे और भुक गये। पड़ोस वाली सरला की माँ दिन में चार बार छोटी सी दीवार फाँद कर पूछती—माया की माँ, आज क्या दाल सब्जी बनाई है? और उसी साँस में पूछ लेती—माया के लिये कोई लडका मिला?

माया सुनती तो उसका हृदय रौने लगता। माँ के मुख पर व्यथा गहरी हो जाती, मानो इसमें दोष उनका है और किसी का नहीं। माया ने अपने एक पड़ोसी की बड़ी मिन्नत की। वह किसी तरह मान गया और उसने माया को देहली में एक मामूली सी नौकरी ले दी। अम्बाला 'छोड़ कर जिस दिन माया देहली की ट्रेन में बैठी, तो रोती हुई माँ और भाई तथा बहन उसे स्टेशन पर छोड़ने आये थे। उनको इस अवस्था में छोड़ते हुए माया को दुख हो रहा था। कुछ उसके हृदय में ऐसा हुआ कि माया के आँसू ही नहीं बहे, वह बिल्कुल नहीं रोई।

उन सज्जन की कृपा से माया उस 'कामकाजी' लड़कियों के होस्टल में रहने लगी। माया को वह दिन भी याद है, जब वह नौकरी भी छूट गई थी। माया ने अपने अफसर को नाराज कर दिया था। उस समय वह न जानती थी कि अफसर को नाराज करना अपनी नौकरी से हाथ धोना है। देहली में माया को नौकरी के बिना अधिक दिन नहीं रहना पड़ा। एक विज्ञापन की फर्म को एक लड़की की आवश्यकता थी। माया ने जाकर नौकरी की मांग पेश की। उन्होंने माया को रख

“तुम उत्तर नहीं दे रही हो माया ?” सेठ धनपति ने मेज पर माया के सामने झुकते हुए पूछा । माया चुप रही । उसका मुख ऐसा अनमना सा, उतरा सा, चिन्तित सा लग रहा था, कि उसे देख सेठ धनपति के भाल पर भी चिन्ता की रेखाएं एक क्षण के लिए उभर आईं । संध्या के पाँच, साढ़े-पाँच बजे होटल का विशाल हाल पूरी तरह से भरा हुआ था । फ़रवरी आधी बीत चुकी थी । वातावरण में भरी भरी, दबी दबी गरमी बढ़ती जा रही थी । हाल के साथ सटे बरांडे की खिड़कियाँ खुली थी और उनमें से सिगरेट का धुआँ बाहर जा रहा था, जिसमें लोगों के पसीने की बदबू भी मिली थी । इसी सीली हवा से माया के मन पर बोझ का दबाव बढ़ता जा रहा था । लोग बातचीत में व्यस्त थे और माया उन्हें देखने में ।

“माया, आज न जाने तुम कैसी होती जा रही हो ! मैं कुछ भी पूछता हूँ, उसका उत्तर तुम नहीं देती हो ।”

माया ने सेठजी की ओर देखा, उसकी दृष्टि न जाने क्या मापती हुई हाल के दूसरे कोने में पहुँच गई ।

माया से कोई भी उत्तर न पा सेठजी घबरा गये, उन्होंने माया के लम्बे लाल नाखूनों वाले साँवले हाथ पर अपना बेडौल हाथ रख दिया। माया की आँखों में शून्य भाव था। सेठ साहब की बहुत बड़ी पराजय थी। वह हकलाते हुए बोले—

“माया, उत्तर क्यों नहीं देती ? यह तुम्हें अपनी शक्ति पर विश्वास क्यों नहीं हो रहा ? तुममें बहुत शक्ति है माया ! तुम चाहो तो पुरुष को शतरंज के मोहरों की तरह उनके स्थान पर बैठा सकती हो।”

माया का मौन अब भी नहीं टूटा। उसने केवल दायें-बायें देखा, मानो पूरी तरह जान लेना चाहती है कि कोई और भी देख रहा है कि राजधानी के करोड़पति सेठ धनपति एक नारी की, सार्वजनिक जलपान गृह में, कैसे हाथ जोड़ कर पूजा करते हैं।

होटल के वाद्य वृन्द पर अंग्रेजी की कोई गत बज रही थी... उस गान के शब्द लिए जाएं तो उनका यही आशय था—ओ बीस वर्षीय सुन्दर युवती, तू घाटी की तराई पर मिलना ..घास के मैदान में मिलना जब फूल खिले होंगे, निर्भर का पानी कल-कल करके बहता होगा... घाटी का प्रत्येक वृक्ष हरा होगा। ओ बीस वर्षीय युवती !

“ओ बीस वर्षीय सुन्दर युवती ” कहते हुए मेजर कबाड माया के पास खाली कुर्सी पर बैठ गया। उसे देखते ही सेठ धनपति के भाल पर भृकुटी तन गई। वह बोले नहीं, रूमाल निकाल कर अपनी विवशता छिपाने को अपना मुंह पोंछने लगे।

माया जोर से खिलखिला कर हँस दी।

“क्यों, बड़ी खुश नज़र आ रही हो ?”

“हाँ, बहुत खुश हूँ। तुम क्यों जलते हो ?”

“मैं नहीं जलता। मेरा यह सिगरेट देख रही हो, यह जल रहा है, धुआँ इसमें से निकल रहा है।”

माया पुनः हँस दी।

“आज तो कविता कर रहे हो !”

लिया। माया के काम से वह इतने सन्तुष्ट थे कि उसे जल्दी जल्दी तरक्की मिलने लगी। इन चार पांच वर्षों में माया ने देहली में क्या क्या नहीं सीखा। वह भोली सी माया जब देहली आई थी ‘‘‘ और अब उसे यहां रहते पाँच वर्ष हो चुके थे। वह जानती है शहर में कौन सा दर्जी सबसे सस्ती सिलाई करता है। साड़ियां किस दुकान पर कम कीमत में मिलती हैं। साड़ी एक बार फटती है, तो उस पर दूसरा गाढ़ा रंग करवा कर कितने दिन पहना जा सकता है। नकली सोने के आभूषणों की चमक किस दवाई से बनी रहती है।

यह सब सीखने में माया को क्या क्या नहीं सहना पड़ा। अफसर को खुश कैसे रखा जा सकता है। सेठ धनपति उस विज्ञापन फर्म के मालिक हैं, उनका माया की ओर भुँकना उतना ही अनिवार्य है जितना माया का खाना पीना। ऐसा माया ने अपने अनुभव से सीखा है।

“जीजी, उठो ‘‘‘ कॉफी ले लो।”

“नहीं कला, तुम पियो।”

“जीजी, तुम इतनी कठोर तो कभी नहीं थी। यह आज क्या बात है?”

“कुछ नहीं कला। मैं सोच रही थी, वही जीवन अच्छा था जिसमें नारी घर के भीतर ही रहती थी। पुरुष उसकी देखभाल करता था।”

कला हंस दी।

“क्यों जीजी, यह तुम पल पल में क्यों रंग बदलती हो?”

“लाओ, कॉफी दो। आज सुधाकर नहीं आया था?” माया के मुख पर शरारत भरी मुस्कान थी।

कला का मुख लाल हो गया।

“आश्रम में तो मुजाकात हुई थी।”

“फिर उसके बाद नहीं हुई, क्यों?”

“बिन्दिया के बच्चे की तबीयत अच्छी नहीं। उसे देखने के लिये बुलाया था।”

“तो तुम घर में डाक्टर किस काम की हो ?”

“घर का डाक्टर किसी काम का नहीं होता । फिर बिन्दिया को भी सुधाकर में विश्वास है । वह मुझे तो डाक्टर समझती ही नहीं ।”

“अभी तुममें वह गम्भीरता नहीं कला !”

“वह कैसे आती है जीजी ? मैं तुमसे कुछ मास ही तो छोटी हूँ ।”

“हाँ, परन्तु उससे क्या होता है । तुम अनुभव में तो बहुत छोटी हो । अच्छा अब सो जाओ, साढ़े बारह बज रहे हैं ।”

“कल रविवार है ।”

“अरे हाँ ।” माया के सिर से जैसे किसी ने बहुत बड़ा भार उतार दिया हो । नित्य काम पर जाने वाले लोगों के लिए रविवार कितना महत्व रखता है । कला तो शीघ्र ही सो गई । माया अपने विचारों में डब गई । घंटों पड़ी सोचती रही । बड़ी देर में उसकी आँख लगी ।

: ३ :

उस रात को माया और कला बहुत देर तक नहीं सोई थी । दूसरे दिन रविवार है, सोते समय इस बात का सहारा लेकर वे सोई थी । सुबह आठ बजे तक सोती रहीं । बिन्दिया उनके सोते सोते ही कमरे की अस्त व्यस्त वस्तुओं को सम्भाल कर रख गई । माया की साड़ी तह करके, बटुआ सहेज कर कील पर टांग कर जाने लगी तो बाहर किसी ने दरवाजा खटखटाया ।

माया जाग गई, कला अभी भी सो रही थी । बाहर सूर्य निकल आया था । प्रकाश की कुछ किरणें छन कर कमरे में आ रही थी । बिन्दिया ने दरवाजा खोला ।

“ओह ! डाक्टर साहब, आइये । आप भी आइये ।”

सुधाकर ने हँसते हुए कहा—“क्यों, तुम्हारा मुन्ना कैसा है ?”

बिन्दिया का मुख खिल उठा । इतनी सुबह भी वह बनी ठनी थी ।
“आपकी दया से अब कुछ अच्छा है बाबू जी ।”

माया बिस्तर में उठकर बैठ गई । इतनी सुबह भला इन लोगों को
आने की क्या आवश्यकता थी । सुधाकर मुस्कराता हुआ आगे बढ़ा ।

“नमस्कार जीजी, मैं तुम्हारे पलंग पर बैठ रहा हूँ ।”

माया ने देखा—मधुकर का गोरा मुख प्रातः ओस में धुले घास की
तरह ताजा लग रहा है ।

“आप भी बैठिये मधुकर जी, यहां कुरसी पर । मेरा डाक्टर भाई
तो चंचल और नटखट है ।”

“आप जैसी जीजी मिल जाए, तो कोई भी चंचल और नटखट हो
सकता है । देख नहीं रही, चार चार आदमी कमरे में चिल्ला रहे हैं,
और किसी की नींद नहीं टूटती ।”

माया हंस दी । कला ने करवट बदल कर मुह इन लोगों की ओर
कर लिया । “हम लोग रात को देर से सोई थी ।” कला ने लेटे लेटे
कहा । मधुकर ने माया की ओर देखा ।

“शायद आप देर से लौटी थी ।”

माया के हृदय में हर्ष की एक लहर उठी । तो मधुकर जो होटल
में बैठकर उसकी अवहेलना कर रहा था, वह एक कृत्रिम आवरण मात्र
था ? वह उसके विषय में वैसा तो नहीं सोचता ।

कला मुस्कराई—वह सुधाकर की ओर देख रही थी । माया ने
मधुकर की बात का उत्तर नहीं दिया ।

“बिन्दिया, चाय ले आ ।” माया ने आवाज़ दी ।

मधुकर को बात करने के लिये कुछ सूझा नहीं, उसने सिगरेट जला
ली और बाहर देखने लगा ।

माया के सामने श्रृंगार-मेज का बड़ा सा शीशा लगा था । वह
अपना मुख उसमें देख सकती थी । उसने देखा, उसका साँवला रंग और
काले लम्बे बाल बड़े भयंकर लग रहे हैं । कला की परछाई भी शीशे

में दिखाई दे रही थी। दूध सी सफेद, जैसे विधाता ने उसे गढ़ने में दुनिया के और कामों से छुटी पाकर उसे गढ़ा हो। सुधाकर साँवला है, अपने भाई मधुकर की तरह गोरा नहीं।

माया की बड़ी बड़ी आँखों में गहरी व्यथा भर आई। उसका साँवला मुख दीन एवं करुण हो उठा। उसका जी चाहा—मधुकर से कह दे, ‘तुम यहाँ से चले जाओ, देहली से चले जाओ, मैं तुम्हें नहीं देखना चाहती, मैं शान्ति चाहती हूँ, मैं चुप रहना चाहती हूँ, मेरा जीवन जैसा भी हो, तुम उसमें मत आओ।’ ओह ! काश ! वह देखने में इससे अच्छी होती।

कला लेटी लेटी बोली—

“जीजी कल रात से कुछ अनमनी हैं।”

माया ने ज़रा रोष से कहा—“कोई और बात करो कला ! तुम्हारी जीजी को छोड़ कर दुनिया में अनेक विषय हैं।”

मधुकर ने सिगरेट का धुँआँ छोड़ते हुए कहा—“हाँ क्यों नहीं ... सेठ धनपति कौन सी नई कम्पनी बना रहे हैं ?”

ओह ! यह प्रहार।

माया को चुनौती है। मधुकर ने कभी यह पूछा तक नहीं—माया, तुम जो उस बूढ़े सेठ के साथ बाहर घूमती फिरती हो, वह किस लिये ? तुम्हें उस सेठ में क्या आकर्षण दिखाई देता है ?

कला और सुधाकर हंस दिये।

माया इसका उत्तर देगी। बोली—

“वह कम्पनी नहीं, नया अखबार खोलने जा रहे हैं।”

मधुकर एक दैनिक का सह-सम्पादक है।

वह मुस्कराया।

“बहुत खूब ! अखबार के बारे में सेठ साहब क्या जानें ? यह भी कोई चांदी के सिक्के हैं या पेपर के नोट ?”

“चांदी के सिक्के और पेपर के नोट एक सम्पादक को खरीद सकते हैं।”

“ओह ! अब समझा । माया देवी, एक सम्पादक को ही नहीं, नारी को भी खरीद सकते हैं।”

“नारी पैसे से नहीं, प्यार से खरीदी जा सकती है।”

बिन्दिया चाय ले आई ।

कला उठकर चाय बनाने लगी । माया दाँत साफ करने का ब्रुश लेकर दूसरी ओर चली गई । उसकी आँखों में आँसू उमड़ उमड़ कर आ रहे थे । मधुकर उसे नीच समझता है । हाँ, माया को सेठ साहब सदैव कोई न कोई उपहार देते रहते हैं । ‘बिज़नेस’ में उनको उससे बड़ा लाभ होता है । जब सेठ साहब उसे घर छोड़ने आते हैं तो साथ में एक न एक उपहार भी देते हैं । कभी अंगूठी, नहीं तो कान में पहनने के कर्णाफूल, चूड़ी, नेकलेस । माया उनका काम ठहरा देती है—बड़े से बड़ा काम—और उसके लिये वह माया को प्रसन्न कर देते हैं । माया इन आभूषणों का क्या करती है ।

माया ने दाँत साफ़ किये । मुहं धोते समय वह सोच रही थी—मधुकर ठीक कहता है । क्या वह सेठ से ईर्ष्या करता है । माया ने लम्बे काले बाल जो अभी तक बिल्कुल खुले थे बाँध लिये । ...मधु क्यों ईर्ष्या करेगा ? ... माया अपने को धोखा नहीं देगी । वह जानती है—वह सुन्दर नहीं । उसका अपना अनुभव उसे भ्रम में नहीं रखेगा ।

सेठ धनपति ने एक बार कहा था—माया तुम में अपार शक्ति है, तुम चाहो तो पुरुष को पाँच मिनट में पराजित कर सकती हो । शायद, शायद वह पुरुष सेठ साहब स्वयं हैं, नहीं तो कौन हो सकता है ?

कला ने आवाज़ दी — “जीजी ! जीजी !”

माया ने मुँह पोंछा और भीतर आ गई । उसकी नारी मधुकर से झुकती है परन्तु माया ने देहली में रह कर यह नहीं सीखा कि आज बीसवीं सदी में वह अपने इस झुकाव को प्रकट होने दे । मनोरमा ने

रमेश के सामने अपना भुकाव प्रकट होने दिया था, उसका परिणाम वही निकला '... जो निकला करता है। रमेश मनोरमा का विवाह हुआ और फिर एक लड़का हुआ, और रमेश की नज़रें फिरने लगी। वह नित्य नई लड़की के पीछे फिरता। माया ने सिर को एक झटका दिया और जिस समय वह कमरे में आयी वह अपनी भावनाओं पर काबू पा चुकी थी।

कला चम्पा के विषय में बातचीत कर रही थी।

माया ने कहा "एक चम्पा क्या, यहाँ हजारों नारियाँ चम्पा की तरह हैं। मधुकर ! कला जी अभी भोली हैं। संसार के चक्कर को जानती नहीं। जान जायेंगी, शायद न भी जाने क्योंकि इसके पास वह सुविधा है जिससे संसार का कोई सम्बन्ध नहीं।"—माया ने चाय की प्याली लेते हुए कहा।

"आप पैसे को इतना महत्व क्यों देती हैं, माया जी ?" मधुकर ने माया की ओर बड़े गौर से देखते हुए पूछा।

"मधुकर जी, अगर आप चाहते हैं कि इसके उत्तर में मैं यह कहूँ— मुझे रुपये की कोई आवश्यकता नहीं—यह मेरे लिए फ़ालतू की चीज़ है, तो मैं अपने को और अपने मित्रों को धोखा दूँगी।"

"वाह ! जीजी, सच कह रही हो। भैया तो कवि हैं, वह इस सबका महत्व नहीं समझते। पैसा ही जीवन नहीं है।" कला ने सम्मति दी।

"क्या आप मनुष्य का मूल्य उसके पास जितना रुपया है उससे आँकती हैं ?"

"आप लोग तो बात को तोड़ कर न जाने किधर मोड़ लेते हैं। मैं क्या हम सभी मनुष्य का मूल्य उसके रुपयों से आँकते हैं।"

"माया देवी, आप मुझको क्यों बीच में घसीट रही हैं?" मधु क्रोध से लाल होकर बोला।

"मैं सच्ची बात कहती हूँ। और सत्य को स्वीकार करने का आप में साहस नहीं है। आप मुझ से, कला से बात करते हैं, परन्तु बिन्दिशा

से इतनी मित्रता से क्यों नहीं बोलते । क्या बिन्दिया मनुष्य नहीं है ? क्या वह नारी नहीं है ? वह देखने में कला से नहीं, तो मुझसे तो अवश्य सुन्दर है । आप उससे क्यों बातचीत नहीं करते ?”

कला खिलखिला दी—“तुम कैसी बात कर रही हो ? यह, या इन जैसे साहब बिन्दिया से बात कैसे करेंगे, केवल समय आने पर चम्पा जैसा व्यवहार करेंगे ।”

“भोली हो कला । चम्पा से बढ़कर भी नारी की दुर्दशा हो सकती है ।”

सुधाकर इस बातचीत से उकता गया था । बोला—

“आज इतवार है, कोई काम की बातचीत की जाए । यह क्या चोट पर चोट । जीजी, आप लोगों का क्या प्रोग्राम है ?”

माया मुस्करा दी । उसकी बड़ी बड़ी आँखों में एक अतीव कोमल भाव उभर आया । जब वह धन की इतनी स्तुति कर रही थी, तो उसके मुख पर एक प्रकार की उपेक्षा फैली हुई थी ।

“सुधाकर, तुम ही क्यों नहीं प्रोग्राम बना लेते ? हम लोगों का तो अभी तक कोई प्रोग्राम नहीं है ।”

सुधाकर मुस्करा दिया ।

“भैया बतलायेंगे ।”

मधुकर ने कुरसी से उठते हुए कहा—

“मुझे कुछ काम है, मैं तो चलता हूँ ।”

“अरे ! भैया, घर से आपने ओखला पिकनिक पर जाने का प्रोग्राम बनाया था, इस समय क्यों बदल लेना चाहते हैं ?”

“मैंने तुम्हें कहा था पिकनिक पर जाने के लिए ?”

“हां, आपने भैया !”

माया ने देखा—मधुकर की आँखों में व्यथा है ।

“पिकनिक पर तो नहीं—चलिये, यमुना किनारे सैर के लिए चलें ।”

माया मधुकर की ओर देख रही थी। मधुकर ने अपने भाई की ओर देखा। वह बोला—“हाँ, क्यों नहीं भैया, मैं और कला आज मॉनिंग शो सिनेमा जायेंगे।”

मधुकर चौंका, उत्तर नहीं दिया—बुप रहा।

कला आलमारी से साड़ी निकाल कर गुसलखाने की ओर चली गई।

“आप यदि व्यस्त न हों तो यही बैठिये मधुकर जी।”

“यहां आपके घर पर तो और लोगों के आने की भी सम्भावना है। क्यों, मैं ठीक कह रहा हूँ न?”

“नहीं। इतवार मेरा अपना होता है। आज कोई न आएगा।”

“आप बाहर न चल सकेंगी? यहाँ मेरा दम घुटता है। हाँ, शायद मेरे साथ जाने में आपको सुविधा न हो क्योंकि मेरे पास मोटर नहीं है।”

“मैं साइकिल पर जा सकती हूँ।”

“दूर चलेंगे, मैं दूर जाना चाहता हूँ।”

“चलिये, मैं चलूँगी।”

“इतनी दूर साइकिल पर चल सकेंगी?”

“क्यों नहीं, मैं बहुत कोमल नहीं हूँ।”

दोनों सुधाकर की उपस्थिति भूल चुके थे। वह भी अखबार उठाकर बाहर बरांडे में चला गया था।

मधुकर ने माया की बात का उत्तर नहीं दिया। वह सिगरेट जला कर वहीं बैठ गया। माया साड़ी पर इस्त्री चलाने लगी।

“बहुत काम करती हो।”

“नहीं तो, यह कोई काम नहीं।”

माया के बन्धे बाल खुल गए थे, मधुकर उन्हें ध्यान से देखने लगा। ऐसी कठोर लड़की के इतने सुन्दर बाल हो सकते हैं। बाहर किसी ने दरवाजा खटखटाया।

“माया जीजी! माया जीजी!”

“आ जाओ ऐलिस!”

ऐलिस कमरे के भीतर आ गई। पीली सी लम्बी सी दुबली सी लड़की, जिसके मुख पर साफ़ साफ़ लिखा था—मेरी हालत ठीक नहीं, मेरी मदद करो। उसके मुख से ऐसे लगता था मानो उसने बहुत दिनों से खाना नहीं खाया। उसके बाल अस्त व्यस्त और रूखे थे। उसके कमरे के भीतर आते ही शराब की तीखी दुर्गन्ध फैल गई। उसकी अंगुलियां सिगरेट पीने से पीली पड़ चुकी थीं। वह माया के बिस्तर पर आकर धम से बैठ गई।

माया ने इस्त्री को अलग रखा।

मधुकर को सूझा नहीं, यह कौन है ! इतना वह भी जानता है कि माया के पास बहुत सी लड़कियां आती जाती रहती हैं। माया उसका परिचय देने को ही थी कि ऐलिस फूट फूट कर रोने लगी।

“अरे! ऐलिस तुम्हें क्या हुआ ?”

माया ने उसके कंधे पर हाथ रखा। मधुकर धृणा से भर उठा। माया क्यों इतनी गन्दी लड़की से सहानुभूति दिखला रही है ?

“माया जीजी। मैं बहुत मुसीबत में हूं।”

“क्या मुसीबत है री ? अभी उस दिन तो पच्चास रुपये दिये थे। क्या हुए, लगता है तुमने शराब पी है ?”

वह लड़की और जोर से रोने लगी। “क्या करूं जीजी ? जॉन को नौकरी मिली थी, फिर छूट गई, वह मुझ से रुपया मांगता है, नहीं तो मेरी नौकरी छुड़ाने की धमकी देता है।”

“तू जॉन को ही क्यों नहीं छोड़ देती ?”

ऐलिस के आंसू एक क्षण के लिये बन्द हो गये।

“यह कैसे हो सकता है ?”

माया का मुंह लाल हो गया।

“क्यों, तू पुरुष के बिना जी नहीं सकती ? और जीकर जॉन को छोड़ किसी टामी या हैरी से मेलजोल बढ़ा, तू एक जॉन के पीछे क्यों

पड़ी है ? और वह तेरी जान लेने पर तुला हुआ है । एक ओर तू उसे रुपया देती है दूसरी ओर उसकी धमकियाँ सहती है ।”

मधुकर के गले में जैसे कुछ कड़वा भर गया । उसका जी चाहा उठ कर चला जाये । परन्तु वह बैठा रहा, यह देखना चाहता था कि माया ऐलिस को और नेक सलाह कौन सी देती है । छिः, वह गिरी हुई लड़की भी अपने जॉन को छोड़ने को तैयार नहीं । वह ईसाई है, उसका धर्म भी उसको इस बात की स्वतंत्रता देता है कि वह एक जॉन को छोड़ दस बीस जॉन बदल सकती है । परन्तु वह उसे छोड़ने को तैयार नहीं । यही तो भारतीय आदर्श है ।

माया तो भारतीय नारी जाति पर अभिशाप है । मधुकर इसी माया के चक्कर में यहां बैठा है । क्रोध से उसका मुंह लाल हो उठा । परन्तु उसने अपना संयम नहीं खोया ।

कमरे में बिन्दिया आ गई । “माया बीबी जी, जॉन साब बाहर खड़े हैं । ऐलिस बीबी को बुलाते हैं ।”

भय से व्याकुल होकर ऐलिस ने माया की ओर प्रार्थना-भरी दृष्टि से देखा ।

माया ने अपने पास पड़े बटुए को उठाया और एक जोड़ी सोने के काँटे निकाल ऐलिस के हाथ में थमा दिये और बोली—“अब तुमने शराब पी, तो तेरा मुंह नहीं देखूंगी । इस महीने और मत माँगना ।”

ऐलिस को एक क्षण के लिये भी दुविधा नहीं हुई । उसने वह कांटे ले लिये और अपने गन्दे मुख से माया के हाथों को चूम लिया । मधुकर भीतर से जल उठा ।

कला तैयार होकर निकल आई थी ।

“अरे ऐलिस तुम, सुनाओ क्या हाल है ? तुम्हारे मुख से शराब की दुर्गन्ध आ रही है यह तुम शराब क्यों पीती हो ?”

ऐलिस उठने लगी ।

कला और पास आ गई । धीमे से बोली—“ऐलिस इस हालत में

शराब अच्छी नहीं होती ।”

“क्या करूँ, मुझसे उठा भी नहीं जाता, यदि मैं शराब न पीऊँ तो, काम पर कैसे जाऊँ ?”

“तुम्हें वह टॉनिक लिख कर दी थी ।”

“पैसे नहीं थे डाक्टर, टॉनिक कहाँ से पीती ।”

कला ने माया की ओर से देखते हुए कहा—“पैसे तो मैंने तुम्हें दिये थे न ।”

बड़े सहज स्वर से ऐलिस ने उत्तर दिया—“वह तो मैंने जॉन की नानी के कफ़न के लिए दे दिए ।”

“ओह !” माया के मुख से निकला ।

“अच्छा तुम कल शाम को आना मैं तुम्हें टॉनिक ले दूँगी ।” कला ने अपना बटुआ उठाया और बाहर चली गई ।

ऐलिस ने भी माया का हाथ कृतज्ञता से दबाया और चली गई ।

माया अपने पलंग पर बैठी रह गई । मधुकर ने सिगरेट जला ली । माया ने मुस्कराते हुए अपनी साड़ी उठाई और जाते हुए बोली—
“मैं स्नान करके अभी आ रही हूँ ।”

मधुकर ने उत्तर नहीं दिया, बैठा रहा । उसने जो देखा था, उस पर उसे विश्वास नहीं आ रहा था । ऐलिस की बातों से पता चलता है कि वह माँ बनने वाली है । जॉन से शायद उसका ब्याह नहीं हुआ । कला उसका इलाज करती है । माया उसे जॉन को छोड़ देने की सलाह देती है और जॉन की धमकियाँ सहने को उसे सोने के काँटे देती है ।

माया स्नान करके लौटी तो देखा मधुकर कमरे में नहीं था । वह तैयार होने लगी । बड़ी सावधानी से उसने जूड़ा बनाया । हीरे के टाप्स पहने और हाथ में सोने की चूड़ियाँ बदलीं । भाल पर कुमकुम लगाते समय उसके सामने अनायास मधुकर आ गया । एक क्षण के लिए वह ठिठकी, परन्तु उसने देखा कमरे में उसके सिवाय और कोई नहीं । वह तो उसके मन की आँखें देख रही थीं ।

माया ने हल्की सी अंग्रेजी सुगन्ध अपनी साड़ी पर और कानों के पीछे लगा ली ।

मधुकर पहले तो बहुत बड़ बड़ कर बातें कर रहा था, परन्तु अब वह स्वयं टैक्सी ले आया ।

माया को अचम्भा अवश्य हुआ, परन्तु वह बोली नहीं कि हम लोग तो साईकिल पर जाने वाले थे ।

माया टैक्सी में बैठ गई, मधुकर भी बगल में बैठ गया । वह भी मौन था । उसके मुख की गम्भीरता को देख कर माया का जी चाहा ऊंचे से हँस दे । पर नहीं, यदि वह ऐसा करेगी, तो वह झल्ला उठेगा । उसकी अजीब सी आदतें हैं ।

इंडिया गेट को पार करके, निजामुद्दीन तथा भोगल से भी दूर लम्बी मथुरा रोड़ पर मधुकर ने टैक्सी वाले को रोकने के लिए कहा । दोनों अभी तक मौन थे । माया का जी चाहता था बात करे । कबाड होता तो अभी तक वह दुनिया भर की बातें कर चुका होता ।

माया को याद आ गया, उसने किसी को कहते सुना है । पढ़ा नहीं । क्योंकि वह पढ़ती बहुत कम है, उसे फुर्सत ही कहाँ मिलती है । माया ने किसी को कहते सुना है .. कि प्रेमी दो प्रकार के होते हैं । एक वह जो प्रेमिका के सामने बातें करते चले जाते हैं, शायद प्रेमिका उनकी बातें सुनती थकती नहीं । दूसरी प्रकार के प्रेमी की ज़बान पर, प्रेमिका के सामने ताला ही लग जाता है । वह बात करने में झिझकता है । माया से भूल हो गई । सिनेमा में तो प्रेमी गाने लगते हैं । गाने का चित्र माया के मानस पट पर आ गया । पेड़ के सहारे खड़े होकर, आकाश की ओर मुख करके, प्रायः प्रेमी गाते रहते हैं । माया अपने आप मुस्करा उठी ।

दूर दूर तक खेत फैले हुए थे । एक किसान महिला सिर पर दही की भरी मटकी लेकर बगल में कपड़े में रोटी दाबे चली आ रही थी । मधुकर ने भी देखा, माया ने भी ।

मायाबोली—“कितनी पति-परायण है बेचारी ।”

“बड़ा ‘रोमांटिक’ लग रहा होगा पति का।”

“आपकी कल्पना में यह रोमांस है ? मैं इसे जीवन का यथार्थ कहती हूँ।”

“फिर बहस करने लगीं।”

“ओह ! आपको बहस बुरी लगती है। परन्तु यह तो बहस न थी, खैर मेरी बात चीत आपको पसन्द न हो तो चुप हो जाऊँ ?”

“नही माया, मैं चुप होने के लिये नहीं कहता, मैं केवल यह चाहता हूँ तुम मुझसे वैसा व्यवहार न करो जैसा तुम सेठ और कबाड से करती हो।”

माया खेत की संकीर्ण पगडंडी पर चलती चलती खड़ी हो गई। मधुकर भी खड़ा हो गया। माया के हृदय में हर्ष की एक लहर उठी और मादकता बन कर पूरे शरीर पर छा गई। उसने एक टक मधुकर को देखा।

“क्या देख रही हो माया ?”

मधुकर ने माया का हाथ पकड़ लिया, एक विद्युत् छू जाने वाली सनसनाहट माया के शरीर में फैल गई।

“आगे बढ़ो माया” मधु सूखे कंठ से कह रहा था।

माया ने मधु का हाथ छोड़ दिया वह आगे बढ़ गई। ‘आप’ से ‘तुम’ ! तीन वर्ष की मुलाकात में यह पहला अवसर है। एक दिन भरी बरसती बरसात में माया को मधुकर के दफ्तर में बड़ी देर हो गई थी। मधु उसे घर तक छोड़ने आया था ... रात को दस बज गए थे ... उस दिन माया और मधु की बड़ी घुलमिल कर बातें हुई थीं, फिर भी मधु ने माया को इस तरह नहीं पुकारा था।

माया के पग डगमगा रहे थे।

“क्यों, थक गई ?” मधु ने माया के कन्धे पर हाथ रख के पूछा।

“नही।” माया का स्वर काँप रहा था। उसकी विशाल आँखों में ज्योति नृत्य कर रही थी। घनी लम्बी पुतलियाँ अपने आप झुकती जा रहीं थी।

“चलो बैठ जाँय”, मधु ने एक आम के पेड़ के टूँठ को बताते हुए कहा। बहुत ही पुराना आम का पेड़ था। उसकी शाखायें चार पाँच गज के घेरे में फैली हुई थीं।

माया और मधु पास पास बैठ गये।

“आपको तो एक ज़रूरी काम था।” माया की आँखों में शरारत थी।

“ओह ! तुम फिर आ गई अपनी चाल पर।”

“बुरा लगा आपको ?”

“नही बड़ी मीठी बात कही है तुमने।”

“मैंने जीवन में कुछ मीठा, कुछ सुन्दर देखा ही नहीं, क्या कहूंगी।”

“तुम बड़ी कटु हो जीवन के प्रति। जीवन इतना बुरा नहीं है माया।”

माया की आँखों में आँसू रह रह कर आना चाहते थे। परन्तु वह उन पर काबू पाने में अम्यस्त हो चुकी थी। मधु ने दुराव की दीवार फाँद ली है। वह अति निकट आ गया है। माया इस निकटता को कैसे सह सकेगी !

“माया मैं लगभग तुम्हें तीन वर्षों से जानता हूँ।”

“हाँ...।”

“तुम अभी भी मेरे लिये पहेली हो।”

माया के जी में आया, कह दे, नारी जब तक पहेली बनी रहे, तब तक पुरुष की दिलचस्पी उसमें रहती है, नहीं तो समाप्त हो जाती है।

“कब तक पहेली बनी रहोगी माया ?”

“जब तक आप चाहेंगे।”

“मैं तो तुम्हें जानना चाहता हूँ माया ... बहुत निकट से।”

माया के शरीर में एक बार और सिहरन हुई।

“जान कर क्या कीजिएगा ?”

“यह प्रश्न है माया, या तुम मुझे टाल देना चाहती हो।”

“मैं क्या चाहती हूँ, यह तो आपने कभी भी जानना नहीं चाहा ?”

“क्या मैं ऐसा हूँ ?”

“हाँ, आपमें ‘अहं’ बहुत है।”

मधुकर के कान लाल हो गये।

बाजरे की फली डाल कर एक बटेर बैठ गया, दूर से चील उड़ती आई और उस बटेर को उठाकर चलती बनी। बटेर का चीत्कार आकाश में फैल गया।

माया का हृदय द्रवित हो उठा था। अपने दुःख से, मधुकर के स्नेह प्रदर्शन से वह भावुक हो चुकी थी। टप टप आँसू उसके गालों पर आ गये।

“ओह यह शोषण ! देखा आपने ?”

“किसका शोषण, कैसा शोषण, मैंने कुछ नहीं देखा और न देखना चाहता हूँ। केवल तुम्हें देख रहा हूँ। माया ! मेरी ओर देखो ... तुम्हें क्या दुःख है ? मुझे बतलाओ न।”

“मुझे कौन सा दुःख होगा।”

“कहो घर से कोई पत्र आया है ?”

“हाँ।”

“कब ?”

“दो दिन हुए।”

“सब कैसे है ?”

“अच्छे हैं।”

“माता जी ने ऐसी बात तो नहीं लिखी जिसके कारण तुम दुःखी हो ?”

“नहीं।”

“क्या लिखा है ?”

“मुझे अम्बाला बुला रही है।”

“जा रही हो ?”

“नहीं।”

“क्यों ?”

“यहाँ काम कौन करे ।”

“छुटी ले लो ।”

“इस वर्ष छुटी न लूगी ।”

“उनका मन करता होगा तुम्हें मिलने को ।”

“अभी दो महीने हुए मैं दो दिन के लिये गई थी ।”

माया को अनमनी देख कर मधुकर चुप हो गया । उसने भी बात को आगे नहीं बढ़ाया ।

“माया आज मैं किसी विशेष कारण से तुम्हें यहां लाया हूं ।”

“ओह ! मैं न जानती थी ।”

“मैं बहुत दिनों से सोच रहा हूं कि ... कि तुम और मैं एक दूसरे को अच्छी तरह संतुलन कर लेते हैं । तुम यथार्थवादी हो और मैं भावुक हूं ।”

माया का हृदय धक धक करने लगा ।

“मैं सोचता हूँ माया, तुम इन पिछले तीन वर्षों में मुझे बहुत अच्छी तरह जान गई हो । क्यों ?”

“हाँ,” माया ने धीरे से सिर हिलाया ।

“मैं चाहता हूँ माया ... हम दोनों एक हो जाएं तो कैसा रहे ?”

ओफ ! माया हर्ष विभोर हो उठी । उसकी मानसिक आँखों के सामने परियां नृत्य कर रही थी । जैसे सिन्दूरी साँझ को ... समुद्र के किनारे, मदमाती ठंडी समीर में, सुनहरी नाव में, सोने के तार के कपड़े पहने जल परियां नृत्य कर रही हों ।

माया का सिर झुक गया घुटनों पर । वह सिसक कर रो उठी । मधुकर कवि है, आंसू उसके लिये बड़े अमूल्य हैं चाहे वह किसी के हों । उसको पूर्ण विश्वास है, किसी की आँखों में यदि आंसू आते हैं तो वह ऐसे ही नहीं आ जाते । उनकी प्रेरणा हृदय की गहनतम व्यथा से होती है । मधुकर माया के सिर पर हाथ फेरने लगा । माया का सावधानी से

बनाया जूड़ा खुल गया और बाल बिखर गये। उनकी हल्की मीठी सुगन्ध ने मधुकर को उन्मत्त बना दिया। माया अभी भी सिसक रही थी। मधुकर ने उसके लम्बे बालों में अपना मुह छिपा लिया। उन्हें धीरे से चूम लिया।

तीन वर्ष के परिचय में मधुकर ने माया को रोते नहीं देखा। यह पहली बार वह रो रही थी इतना सिसक कर। मधुकर समझा नहीं क्या कारण है। उसने धीरे से माया का मुख ऊँचा किया।

“माया,” वह बड़े धीमे स्वर से बोला।

“माया।” माया चुप थी।

मधुकर ने अपना रुमाल निकाला। माया का मुख ऊँचा किया जो आँसुओं से भीग चुका था। मधुकर के आँसू पोछने से माया पुनः रो दी। इस बार उसका सिर मधु के वक्ष पर था।

मधुकर स्वयं भी मौन था। उसके हृदय की धड़कन बड़ी तेज थी। वही माया जिसके दम्भ से वह बौखला उठता था, उसके वक्ष पर सिर टेके बेबसी से रो रही है। कल होटल में, सेठ धनपति और मेजर कबाड को वह अपनी अँगुलियों के इशारों पर नचा रही थी। इस रुदन का क्या अर्थ निकाले वह !

बारह बजने लगे थे। सूर्य का प्रकाश तेजी से सिर पर आ रहा था।

मधुकर ने माया को अपनी बाहों के दबाव से सूचित कर दिया, कि वह वहाँ सुरक्षित है। परन्तु यह उसके प्रश्न का उत्तर तो नहीं।

मधुकर के मन में खटका। उसने स्वयं को समझा दिया। इससे बढ़कर क्या उत्तर होगा। वह घायल हरिणी की तरह उसके वश में है। मधुकर का ‘पुरुष’ गर्व से मुस्करा उठा।

“चुप हो जाओ माया। देखो मेरी कसम अब जो तुम रोई ... ईश्वर के लिये चुप हो जाओ।”

माया ने अपना मुख वही छिपाये हुए पूछा—“एक वादा करते हो ?”

“हाँ माया ।”

“वादे पर अटल रहोगे ?”

“प्रण करता हूँ ।”

“मुझसे यह न पूछना मैं क्यों रोई हूँ ।”

“ओह !” जैसे तेज़ चाकू से मधुकर की अंगुली कट गई हो, खून बह गया हो ।

“नहीं पूछूँगा माया ... पर यह तो मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं ।”

माया उत्तर में मधुकर से और सटकर बैठ गई । और उसके बाएँ हाथ को जोर से दबा दिया ।

“अच्छा चलो अब चले ।”

माया मधुकर से कह रही थी टैंक्सो तक पहुँचने में जैसे मीलों का रास्ता तय करना हो । दोनों एक दूसरे को सहारा देकर आए और ऊँघते हुए ड्राइवर को जगा दिया । मधुकर पूछना चाहता था कि तुम ऐलिस को ऐसी नेक सलाह क्यों देना चाहती हो कि वह जॉन को छोड़ दे । परन्तु वह कुछ भी नहीं कह पाया । केवल रह रह कर माया को देख लेता ।

तीन वर्ष में पहली बार माया उसके सामने रोई है । और आज पहली बार उसने माया से ऐसा प्रस्ताव किया है । वह दोनों मौन थे । टैंकसी शहर की ओर भागने लगी ।

: ४ :

कला अपने आश्रम में बैठी है । मार्च महीने का अन्त है परन्तु वर्षा मूसलाधार हो रही है, जैसे थमेगी ही नहीं । कला के पास अपनी एक छोटी सी मोटर है, वह उसमें घर चली जाती, परन्तु आज मोटर

सुधाकर ले गया है, उसे अपनी प्राइवेट प्रैक्टिस के लिए चाहिये थी। वह मोटर खरीदना तो चाहता था, परन्तु इधर कला की मोटर और उसकी मोटर कोई दो नहीं हैं। उसने मोटर का विचार फिलहाल तो स्थगित कर दिया है।

वर्षा के न थमने से विमला कला के पास बैठी है। कला के मन में भावनाओं का तूफान उठ रहा है। वर्षा की फुहारें देख उसका जी हो आया है कि वह सुधाकर के पास होती।

विमला विवाहित है। उसका पति दिल्ली में ही एक सरकारी दफ्तर में मामूली नौकरी करता है। विमला सिलाई का काम बहुत अच्छा जानती है, इसीलिए उसे आश्रम में सिलाई सिखलाने पर रख लिया गया है।

विमला सदा हंसती रहती है। उसका भरा भरा शरीर, गोल गोल गालों पर हल्की गुलाबी लाली है। माथे पर बड़ी सी सुहाग की बिन्दी होती है, हाथों में सोने और काँच की मिली जुली चूड़ियाँ रह रह कर खनक उठती। कला समय मिलने पर विमला से अवश्य बात करती। क्योंकि विमला इतनी साफ सुथरी और औरों से भिन्न थी कि कला उसे अपनी सखी के स्तर पर समझती। कला सदैव विमला से उसके पति के विषय में पूछती।

“कहो विमला तुम्हारे पति कैसे हैं?”

विमला को मानो बात करने की प्रेरणा मिल जाती। वह बोलती रहती, बोलती रहती। उसका पति बड़ा अच्छा है, ज़रा सी देर होने पर वह स्वयं लेने आता है। रोज़ सवेरे आश्रम छोड़ने आता है। घर पर खाना बनाने में तथा अन्य घरेलू कामों में सहायता करता है। उनके पास बंगला नहीं मोटर नहीं परन्तु फिर भी वह प्रसन्न है। उनका अपना नन्हा सा संसार है।

● कला ने विमला की ओर देखा, सदा की भाँति आज भी उसका मुख हंस रहा था। चेहरा खिला था, भाल पर गोल बिन्दी चमक रही

थी, अग्रेष्ठ बरबस मुस्करा रहे थे। कला उसे देखती तो उसके मन में जाने क्यों कुछ करवट बदलने लगता। वह अनुभव करती कि उसका अपना जीवन निष्फल गया है। वह इस नौकरी को शायद कभी न करती, यदि करती तो तुरन्त छोड़ देती, यदि उसमें सेवा भावना न होती। आज भी सेवा भावना ही उसे सब काम करने पर उत्साहित कर रही है। वह उन नारियों की सेवा करती है जो दुःख की चरम सीमा को लाँघ गई हैं। जिनका अपना कोई नहीं रहा। सरकार पैसा देती है, ठीक है। पर काम तो कला करती है।

कला को अनमनी देख, विमला चुप हो गई। वर्षा होती रही मूस-लाधार वर्षा। जिस खेमे में यह बैठी थी, वह भीग चुका था, दरवाजे का परदा उठाते हुए कला ने विमला से पूछा—“कहो विमला, तुम्हारे पति तुम्हें कितना चाहते हैं?”

विमला खिलखिला दी।

“वाह! कला बहन, यह भी कोई पूछने की बात है... पति सबके ही चाहते हैं... मेरे भी।” विमला का मुख आरक्त हो गया। मानो उसने जैसे किसी गहरे रहस्य का उद्घाटन कर दिया हो।

कला को चुप देखकर विमला बोली—“क्यों कला बहन आपने भी प्रण किया है कि आप शादी नहीं करेंगी?”

कला ने विमला की ओर देखा। “नहीं विमला, ऐसा प्रण तो मैंने नहीं ले रखा है। यदि मैं यह नौकरी न कर लेती तो मेरा ब्याह कब का हो चुका होता।”

विमला ने विस्मय से कला की ओर देखा। मानो, उसे विश्वास न हुआ हो, बोली, “तो कला बहन अभी क्या बिगड़ा है आप शादी कर लीजिए न।”

कला लजा गई। सुधाकर उससे कल ही कह रहा था “... ‘कला मेरे जीवन में तुमसे बढ़ कर किसी का महत्व नहीं, मेरी आकांक्षा भी तुम्हारी दासी है’।”

ओह ! ब्याह । आज वह माया जीजी से कहेगी कि वह सुधाकर से ब्याह करना चाहती है । विवाह की बात सुन कर माँ भी खुश होगी । उनकी यह कितनी इच्छा है कि कला का घर बसे । माया जीजी उसके लिए अवश्य कुछ न कुछ करेंगी । परन्तु माया जीजी तो उसकी खिल्ली उड़ाती हैं जब भी कला ने ब्याह शादी की बात की है । माया सदैव कहती हैं ब्याह आधुनिक लड़की को आर्थिक आवश्यकता नहीं । यह उसके लिए सुरक्षा का दुर्ग भी नहीं । यह केवल सम्पन्न एवं धनी परिवार की लड़कियों के लिए एक मनबहलाव है । पति एक खिलौना है । कला के लिए 'एरीस्टोक्रेसी' है ।

वह किस तरह व्यंग करती है कि कला के लिए उससे ब्याह की बात करना बहुत आसान न होगा । कला स्वयं ही कर लेगी । ओह ! उसका मुख लाल हो उठा ।

विमला कला के मुख पर होने वाला भावान्तर देख रही थी । इधर कला भी सोच रही थी कि आज तक उसने विवाह के विषय में कभी नहीं सोचा । डाक्टर तो वह हाल ही में बनी है । माँ कभी कह देती थीं तो वह सोचती थी, यह क्या पागलपन है, उन्हें केवल यही सूझता है । वह इससे बढ़ के, इससे प्रगतिवादी कुछ नहीं सोच सकतीं । उनकी कल्पना यही तक सीमित है ।

बाहर वर्षा भी कुछ कम हो गई थी । इतने में सुधाकर आ गया ।

“मैं क्षमा चाहता हूँ कला, मुझे देर हो गई ।”

कला का मुख आरक्त हो उठा । अभी विमला के साथ बातचीत चल रही थी ।

“चलो अब तुम्हें घर पहुँचा दूँ ।”

कला एक क्षण के लिए चौंकी । सुरक्षा का दुर्ग ! माया जीजी कह रही थीं सुरक्षा के लिए आधुनिक लड़की का विवाह नहीं होता । कला

विमला से फुर्सत पाने के लिए मुड़ी कि उसे एक महरी ने आकर बतलाया कि चम्पा की अवस्था बड़ी शोचनीय है। उसके पेट में सुबह से दर्द था, वह छिपाती आ रही थी। सुधाकर वही बरांडे में रह गया। कला चम्पा का निरीक्षण करने चली गई। चम्पा बेहोश सी, बिस्तर पर पड़ी थी। उसका दूध जैसा श्वेत रंग नीला पड़ गया था। कला ने उसकी नाड़ी देखी, बड़ी धीमी गति से चल रही थी।

कला के हृदय में धक्का हुआ। अभी तक एक बार भी चम्पा ने अपना निरीक्षण नहीं करवाया था। चम्पा के पेट में असमय ही बच्चे की मृत्यु हो गई थी। यदि वह बच्चा न निकाला गया तो चम्पा के सारे शरीर में जहर फैल जाने की सम्भावना थी। आश्रम में सैकड़ों स्त्रियाँ भिखारी हुई थी, परन्तु कला की सहानुभूति आरम्भ से ही चम्पा के साथ थी। इस समय चाहे कला दिन भर की थकी थी, परन्तु फिर भी वह चम्पा को इस अवस्था में छोड़ कर घर न लौट सकती थी। एक क्षण के लिए इस बैमौके की बेहोशी ने उसे भुल्ला दिया। चम्पा का आपरेशन एक बड़ा जटिल आपरेशन होगा। क्यों न कला सुधाकर को भी अपने पास ही रहने दे ?

कला ने महरी से नर्स को बुलवाया। चम्पा को 'इंजेक्शन' दे, सुधाकर को बुलाने चली गई। बादलों के घिर जाने के कारण रास्ते भर में गहरा अंधकार छा रहा था। कला चम्पा की संभावित मृत्यु से घबरा उठी। सुधाकर से उसने सहायता के लिए कहा, तो वह मुस्करा दिया, बोला—“हाँ, अवश्य चलो, हम डाक्टर पहले हैं और सब पीछे।”

चम्पा को आपरेशन के कमरे में ले गए।

कनाट प्लेस के बाज़ार में छोटे से प्लैट में कमरे की खिड़की खुली थी। धूप छन कर मधुकर के मुख पर नृत्य कर रही थी। सुधाकर कमरे की वस्तुएं सम्भाल रहा था। किताबें, कागज, सिगरेट के अधजले टुकड़े। घर का का ऐसा रूप हो रहा था जैसे आसाम का भूचाल के बाद का दृश्य।

मधुकर इस समय आराम कुर्सी पर अधजेटा सिगरेट पी रहा था।

“यह रात रात भर तुम कहां गायब रहते हो?”

“केवल दो तीन रातें मैं आश्रम में रहा हूं। चम्पा की हालत बड़ी चिन्ताजनक थी, उसका आपरेशन करना पड़ा।”

मधुकर ने सुधाकर की ओर ऐसे देखा, मानो उसकी बात पर विश्वास नहीं हो रहा हो।

“क्यों भैया?” सुधाकर को अपने भाई से थोड़ा सा डर है। मधुकर से वह भिन्नता भी है।

मधुकर ने सिगरेट का लम्बा सा कश लेते हुए कहा—“आजकल तुम कला की मोटर लिये कहां घूमते रहते हो?”

सुधाकर हँस दिया ।

“हँस क्यों रहे हो ? तुम्हारी दुकान पर मरीज रोज़ ही आते हैं और लौट जाते हैं । तुम कभी भी समय पर यहाँ मिलते नहीं हो । तुम्हारी जमी हुई प्रेक्टिस सब भाड में जायेगी ।”

सुधाकर ने पुराने अखबारों की तय लगाते हुए कहा—“आश्रम में भी काम पर जाता हूँ भैया ।”

“आश्रम का काम तुम्हारी दिनचर्या का एक भाग होना चाहिये, यह तुम्हारा जीवन बन कर नहीं रह जाना चाहिये ।”

“मुझे उस काम में बड़ी दिलचस्पी है ।”

मधुकर के मन में आया कह दे ... दिलचस्पी काम में नहीं, वहाँ की अध्यक्षा सैडी डाक्टर में है । परन्तु वह मौन ही रहा । सुधाकर का मुख लज्जा और क्षोभ से लाल हो उठा ।

बाहर फ्लैट की ‘कालबेल’ किसी ने दबाई । मधुकर अभी पायजामा पहनकर ही बैठा था । सुधाकर फटी सी पतलून, जो उसे फिट नहीं बैठ रही थी, पहने था ।

“यह सवेरे के सात साढ़े सात कौन आ गया ।” मधुकर अपने आप बड़बड़ाया ।

सुधाकर ने किवाड़ खोला । सेठ धनपति ! मधुकर का हृदय धड़क उठा । घृणा से उसकी आँखें जलने लगीं । एक क्षण में यह प्रतिक्रिया हो गई । मुख पर स्वाभाविक शिष्टाचार का भाव लाते हुए वह बोला—
“आइये ! आइये ! सेठ साहब, आज सुबह सुबह कैसे तकलीफ की ?”

सेठ धनपति ने बड़े तपक से हाथ मिलाते हुए मधुकर से कहा—
“आपसे मिलने चला आया । बहुत दिन हो गये थे, आपको देखा नहीं था । इधर से होकर जा रहा था सोचा अब मिलता चलूँ ।”

“आइये बैठिये”—सुधाकर ने एक कुर्सी आगे बढ़ा दी । उसने सेठ साहब का नाम सुन रखा था । साक्षात्कार का पहला अवसर था ।

मधुकर ने परिचय करवाया ... “यह मेरा छोटा भाई डाक्टर सुधाकर।”

सेठ साहब ने हाथ नहीं मिलाया, उठकर सुधाकर की पीठ थपथपाई, मानो मधुकर का छोटा भाई नहीं उनका अपना भाई हो।

सेठ धनपति गरम फ्लैनल का तंग पायजामा और बढ़िया पशमीने की शेरवानी पहने थे। जब मे रेशमी रुमाल और ‘पारकर’ पेन की सुनहरी टोपी दिखाई दे रही थी। सिर पर टोपी सेठ साहब जरा सी तिरछी लगाते हैं। उन्हें शायद यह वहम है कि आयु में छोटे दिखेंगे।

सेठ साहब को क्या काम हो सकता है? मधुकर सोच रहा था।

“मधुकर जी, इवर जो आपका कविता संग्रह निकला है, बढ़िया है, मुझे पसन्द है। मे यहाँ की म्युनिसिपैलिटी की ओर से उसे खरीदना चाहता हूँ, लाइब्रेरियों में भिजवाऊंगा दो सौ कापी।”

मधुकर ने कविता संग्रह ‘संध्या की बेला’ स्वयं प्रकाशित किया था। तीन सौ अप्रकाशित कविताएं लगभग चार पाँच वर्ष पहले की उसके पास पड़ी थी। उसके बाद उसने कविता लिखना बन्द कर दिया है। कभी समय मिलने पर एक आध कविता लिख लेता है।

‘संध्या की बेला’ प्रकाशित करने के लिये मधुकर को अपनी तीन महीने की तनख्वाह पूरी खर्च देनी पड़ी थी। दो सौ कापी एक साथ खरीदी जा रही हैं। दो सौ कापी! सेठ धनपति अपने रुपये का चमत्कार दिखाना चाहता है। एक म्युनिसिपैलिटी के प्रेसीडेंट हैं, न कि भारत भर की म्युनिसिपैलिटियों के। फिर दो सौ लाइब्रेरिया भी तो नहीं होंगी।

मधुकर के स्वाभिमान को धक्का लगा। सेठ धनपति को रुपया गिनना तो जरूर आता होगा, कविता कभी समझ में नहीं आ सकती।

सेठ धनपति सुधाकर से दो एक बातें अपने पेट दर्द के विषय में कह रहे थे। सुधाकर उन्हें समझा रहा था कि वह सब आपके पेट में गैस पैदा हो जाती है। वायु का कष्ट है, आदि आदि।

सुधाकर से बातचीत करके सेठ धनपति ने मधुकर की ओर देखा ।

“मधुकर जी, कुछ कापियाँ मैं नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से भी खरीदूँगा ।”

नागरी प्रचारिणी सभा में भी यह दखल रखने लगे हैं । मधुकर चौका । बोला—

“मुझे अफसोस है कि सब कापियाँ समाप्त हो चुकी हैं, ‘सन्ध्या की बेला’ प्रकाशित होते होते ही बिक गई थी ।”

सुधाकर चौका । ‘सन्ध्या की बेला’ की आठ सौ कापियाँ मोटर गैरिज में रखी थी । दो सौ कापियों में से कुछ भेट स्वरूप मित्रों को भेजी गई थी, और कुछ सम्पादकों को समीक्षा के लिये भेजी गई थी । स्थानीय पुस्तक विक्रेता ने भी कुछ कापियाँ खरीदी थी ।

भैया यह झूठ क्यों बोल रहे हैं । शायद उन्हें याद नहीं कि नीचे आठ सौ कापी पड़ी हैं । याद है तो जानबूझकर ऐसा कह रहे हैं ।

विज्ञापन फर्म के मालिक होने के नाते सेठ धनपति बहुत से अखबार वालों को जानते थे । परन्तु उन्हें माया के बार बार कहने से यह विश्वास हो गया था कि मधुकर से बढ़कर उन्हें कोई भी सलाह देने वाला न होगा । मधुकर जैसे उनसे कभी समझौता नहीं करेगा । अब वह उसे अपनी ओर खेच कर रहेगे, चाहे कुछ भी हो सेठ धनपति को विश्वास है कि पैसे से सब कुछ किया जा सकता है ।

“अच्छा दूसरा संस्करण प्रकाशित होगा तो दो सौ प्रतियाँ मेरी ओर से सुरक्षित कर लीजिये ।”

मधुकर को भी सम्यक्तावश कहना पड़ा—“अवश्य दूसरे संस्करण में मैं नहीं भूलूँगा ।”

“मैं एक दावत दे रहा हूँ मधुकर जी, परसों । कल रात को ही तय किया है । इसलिये स्वयं निमन्त्रण देने आया हूँ कुछ गिने छुने मेहमानों को ।”

मधुकर अभी कुछ बोले कि उसे बीच में ही काट कर सेठ धनपति बोले—“नहीं मैं कोई भी बहाना नहीं सुनना चाहता। आप दोनों को आना ही पड़ेगा, परसों रात को साढ़े सात बजे। भोजन वही कीजिएगा।”

वह बिना मधुकर की स्वीकृति सुने ही उठ गए, सुधाकर से हाथ मिलाया।

सुधाकर बोला—“बैठिये न सेठ साहब नाश्ता खा कर जाइये, ऐसी जल्दी भी क्या है?”

“नहीं ... फिर कभी आऊंगा, अभी मैं, आप को कष्ट नहीं देना चाहता।”

“कष्ट किस बात का, आप बैठिये न।”

“नहीं फिर कभी।” और वह दरवाजा खोल कर निकल गए। मधुकर नहीं उठा।

सुधाकर बाहर तक छोड़ आया। सेठ साहब की मोटर तक। वहां मोटर में माया बैठी थी। इतनी सुबह सेठ साहब के साथ तैयार होकर घूम रही थी। ऊपर क्यों नहीं आई? शायद भैया को बुरा लगता।

नहीं! भैया को क्या बुरा लगता। यह माया है, मनोरमा पहले थी, वह अफ्रीका से आए हुए एक प्रोफेसर से विवाह करवा के वहां चली गई। जमुना को भैया बचपन में चाहते थे। गाँव की सबसे सुन्दर लड़की। उसके अब चार बच्चे हैं। भैया देखते रहे, जमुना का ब्याह हो गया। फिर जमुना यहाँ दिल्ली में क्या करती, उसका निर्वाह कैसे होता, वह बिल्कुल फूहड़ थी।

सुधाकर लौटा तो मधुकर ने तुरन्त पूछा—“चला गया?”

“हाँ चला गया, क्यों? आपने अपना इरादा बदल लिया है?”

“नहीं, मैं इरादा इतनी जल्दी नहीं बदलता।”

“मैं तो वैसे ही पूछ रहा था, अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिये।”

सुधाकर ने मधुकर के साथ रखे स्टूल पर बैठते हुए कहा, “भैया मैं एक बात पूछता हूँ। यह आपको सेठ के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिये था ? वह बिचारा आपको खुश करने का प्रयत्न कर रहा था, एक आप है कि मामूली शिष्टाचार भी भूल जाते हैं।”

“मुझे इस सेठ से पैसे की बू आती है।” मधुकर ने सिगरेट जलाते हुए कहा।

“आपको रुपये से यह जो घृणा है, यह दिखावटी है, या ?”

“क्यों ? तुम्हें इससे कृत्रिमता की बू आती है ? मैं कहता हूँ क्या अधिकार है सेठ धनपति को कि वह करोड़ों रुपये बैंक में जमा करके रखे ?”

“वह तो आप से उस रुपये का कुछ हिस्सा बटाने ही आए थे।”

“मुझे नहीं चाहिए, उसमें हजारों गरीबों की आहों का हाहाकार छिपा है। वह रुपया उसी के पास ठीक है।”

“भैया, आप क्षमा करें तो एक बात कहूँ, आप पूँजीपतियों के सबसे बड़े समर्थक हैं। आप सदैव परोक्ष रूप से उन्हें उस धन को सुरक्षित रखने में सहायता करते हैं।”

“हाँ सुधाकर तुम ठीक कह रहे हो।” माया ने दरवाजा खोलकर घर के भीतर प्रवेश करते हुए कहा।

“आप जीजी !” सुधाकर ने अचम्भा प्रकट किया। साथ में आँख के इशारे से माया पर यह भी जाहिर कर दिया कि मधुकर नहीं जानता कि माया वहाँ बाहर मोटर में बैठी थी।

मधुकर भी कुरसी से उठ कर खड़ा हो गया। अभी सेठ धनपति के आने का स्वाद उसके मुख पर था।

“माया अच्छा है तुम जरा देर से आई हो, नहीं तो तुम्हारा सेठ धनपति अभी अभी उठ कर गया है। सवेरे सवेरे तुम्हें उसके दर्शन करने पड़ते।”

“क्या करने आये थे वह ?” माया ने बटुए में से चाकलेट निकाल कर सुधाकर की ओर बढ़ाया। मधुकर तो खाता ही नहीं, माया ने अपने मुँह में टुकड़ा डाल लिया। चाकलेटों पर जो कागज लिपटा था, मधुकर ने उठा लिया। चाकलेट भारी मूल्य के थे। उसके मन में एक उड़ता हुआ विचार आया, यह इतने मंहगे चाकलेट मैं तो लेकर दे नहीं सकता। इन्हें स्वयं ही खरीदने पड़ेगे। शायद मेठ धनपति ने खरीद कर दिए हों।

“क्यों क्या कह रहे थे मेठ धनपति ? आप तो मुबह गुबह उनका मुग्व देखना जैसा पाप समझते हैं।”

मधुकर बिलबिलना उठा, “हाँ, वह रुपये का गोब दिखाने आया था।”

माया न जाहिर नहीं होने दिया कि मेठ क्यों आया था, या किसी तरह वह भी जानती है। उसने किसी तरह यह बात तो प्रदर्शित ही नहीं होने दी।

“सुधाकर, माया के लिए नश्वे का प्रवन्ध तो करो।”

“भैया, घर में कुछ नहीं, मैं एक मिनट में बाजार में कुछ खरीद लाता हूँ।” सुधाकर ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

“आप लोगों के नौकर को क्या हुआ ?” माया ने पूछा।

“उसकी आज छुट्टी है। आज के दिन हम उसमें कोई काम नहीं लेते।”

“ओह ! तो प्रगतिवादी हो रहे हैं आप, बहुत अच्छा करते हैं, हम दोनों तो बिल्कुल निकम्मी हैं। उस बिचारी बिन्दिया को एक मिनट की फुर्सत नहीं।” माया ने एक अपराधी की भाँति उत्तर दिया।

“प्रगतिवादी होने की इसमें क्या बात है? यह केवल न्याय है। व्यक्ति विशेष का अधिकार है कि उसे आठ दिनों में एक दिन काम में अलग छुट्टी मिलनी चाहिये। वह दिन उसका अपना हो। जब हमको अपनी नौकरी में ऐसा एक दिन मिलता है, तो नौकर को क्यों न मिले।”

सुधाकर कोट पहन कर बाहर चला गया ।

“मधुकर जी मैं एक विशेष काम से आपके पास आई हूँ ।”

हर्ष मिश्रित लाली मधुकर के मुख पर बिखर गई । शायद उस प्रश्न का उत्तर देने आई है माया ।

“कहो”, मधुकर ने माया की आँखों में देखते हुए पूछा । जैसे परीक्षा का परिणाम सुन रहा हो ।

“कला और सुधाकर का विवाह कर दीजिए ।”

एक क्षण के लिये मधुकर मौन हो गया ।

“क्या सोचने लगे ?”

“सुधाकर बालिग है, अपनी मन पसन्द की शादी करेगा । मैं यह नहीं कहता कि कला उसे पसन्द नहीं । कला के माता पिता से भी तो पूछना पड़ेगा ।”

“आप स्वीकृति दे दें तो उन्हें तार दे दिया जायगा ।”

“सुधाकर की स्वीकृति का ?”

“सुधा शायद मना नहीं करेगा, कला के माता पिता अलीगढ़ ही तो रहते हैं । उन्हें आज तार दे दिया जाए तो वह शाम को नहीं तो कल आजाएंगे ।”

मधुकर ने सिगरेट जला लिया ।

“इतनी जल्दी क्यों करना चाहती हो ?” मधुकर बोला ।

“मैं लड़की की ओर से आई हूँ, और लड़की वाले सदैव जल्दी से जल्दी शादी करना चाहते हैं, कहीं लड़के वाले अपनी बात से मुह न फेर लें ।”

मधुकर हँस पड़ा । बोला—“सुधा से पूछ तो लेने दो ।”

“क्या पूछियेगा ... यह ब्याह अब होगा ही । चम्पा का ऑपरेशन जिस रात से हुआ है, मानो वह वीभत्स देख कर ही इनके मन में ब्याह की लालसा जगी है ।”

“वीभत्स की पृष्ठभूमि में सुन्दर अति सुन्दर हो उठा है।” मधुकर ने कहा।

माया की दृष्टि अनायास झुक गई। उसे लगा जैसे मधुकर उसके मुख पर कुछ खोज रहा है, परख रहा है। वह किसी कविता की पंक्तियाँ गुनगुनाने लगा।

माया उठकर कागज कपड़े आदि जो अभी तक बिखरे थे समेटने लगी। मधुकर को बड़ा भला लगा। किस फुर्ती से वह काम करती जा रही है। हल्के पीले रंग की साड़ी उसके शरीर पर खिल रही थी। हरा चुस्त ब्लाउज उसके शरीर की मुडौलता में चार चाँद लगा रहा था। माया के गले में सफेद मोतियों की एक माला थी, कानों में वैसे ही ‘टाप्स’। मुख पर एक निष्कपट भाव।

यही माया सेठ धनपति की रखैल कहलाती है। ओफ ! दुनिया वाले किसी को नहीं छोड़ते। चर्चा करना, बुरी बात कहना, मनगढन्त क्यों न हो, मानो यही उनका काम है। माया इस समय अलौकिक सौंदर्य से दीप्त लग रही थी कि मधुकर अभिभूत हो उठा। उसका कवि मचल गया। मन हुआ, हाथ पकड़ कर माया से कहे, यह सब रहने दो, केवल मेरे पास बैठो।

सुमित्रानन्दन पंत की वह पंक्तियाँ उसके मानसपट पर घूमने लगी।

‘आज रहने दो यह गृहकाज।’

मधुकर ने कह ही दिया—“माया यहाँ बैठो। आज भूल से यहां इस कुटिया को पवित्र करने चली आई हों।”

स्वर की याचना एवं मार्मिकता से माया कोमल हो उठी।

“यह आपके स्वर में इतनी याचना क्यों भरी है?”

“मैं जन्म जन्म का याचक, तू स्नेह मयी कल्यारी।”

किसी कवि की पंक्तियाँ। माया मधुकर के निकट ही बैठ गई।

“कहिये ? अब आप चुप हैं।”

“इतने दिनों बाद मुझे मिलो हो, बोलू या तुम्हें देखू ?”

माया के हृदय पर तीर सी यह बात लगी। देखूँ—जैसे माया का सौंदर्य देखने योग्य है, वह एक गहरी पीड़ा से भर उठी।

काश ! वह देखने में इससे सुन्दर होती। उसे अपने बचपन के साथी कैलाश की याद आ गई। कैलाश माया के पिता के स्कूल के एक मामूली मास्टर का लड़का, गोरा सुन्दर लड़का, माया से तीन चार वर्ष बड़ा था। वह माया से मिलने अक्सर आता, दोनों में खूब घुट घुट कर बातें होती। माया उसका गोरा रंग देखती तो उसका अपना सावला रंग उसकी अपनी आँखों में ही चुभने लगता था।

धीरे धीरे वह बड़े हुए तो यह आकर्षण और भी बढ़ने लगा था। कैलाश कभी कभी माया को पढ़ाने के बहाने भी आता था। माया केवल कैलाश के सम्पर्क में आई थी ... उसने अन्य कोई समवयस्क लड़का न देखा था। इसी लिए माया कैलाश के निकट आती गई। इन्टर करने के बाद कैलाश बनारस अपने मामा के यहाँ बी०ए० पढ़ने के लिये चला गया। माया के पिता की इस बीच बीमारी बढ़ती गई। जब कैलाश लौटा तो वह मृत्यु की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे थे। माया की आँखों में उस समय अन्धकार था। भविष्य की चिन्ताओं से वह घबरा रही थी।

माया के पिता की मृत्यु के बाद कैलाश के पिता उस पर कड़ी नजर रखने लगे। हेड मास्टर साहब की मृत्यु के बाद वह उनका मेल नहीं चाहते थे, कुलच्छनी माया को अपनी बहू बनाएँ और उसकी विधवा मा तथा बच्चों का भार अपने ऊपर ले ले ? माया के घर के सामने गली में ऊँचा ऊँचा बोल कर एक दिन वह कहने लगे—“मुझे अपने चाँद से लड़के को ग्रहण नहीं लगवाना है। काली कलूटी लड़की, गोरा दूध धोया चांद सा लड़का।”

माया ने यह सुना, तो उसके हृदय के टुकड़े टुकड़े हो गये थे। उसके बाद कैलाश कभी उनके घर आता तो चोरी चोरी। वह न जाने क्यों, काली कलूटी माया को प्यार करता था। यदि माया उसे कहती

भी, मैं काली हूँ, तो वह सदैव यही उत्तर देता था—“तुम साँवली हो तो क्या है माया, लैला भी तो साँवली थी। फिर सौंदर्य तो हृदय का देखा जाता है। और तो सब भूठ है, धोखा है। बाहरी सौंदर्य कुछ दिनों के बाद समाप्त हो जाता है।”

तब माया मन में पक्का ठान चुकी थी कि वह नौकरी करने के लिये देहली चली जायगी। कैलाश ने तो उसे नौकरी ढूँढने में कोई सहायता नहीं की थी, वह डरता था। नहीं, उसे विश्वास ही न था कि वह अकेले जा कर देहली जैसे शहर में रह सकेगी।

अभी मधुकर भी वही कह रहा है। मधुकर कवि है, सुन्दर है, उसमें और कैलाश में कहीं न कहीं समानता है।

“क्या सोच रही हो माया?”

“कुछ नहीं, अतीत की एक छोटी सी याद है।”

“तुम तो अतीत में खो जाने वालों में से नहीं हो।”

“हाँ तुम ठीक कहते हो। मैं वर्तमान को अधिक महत्व देती हूँ, क्योंकि मैंने देखा है अतीत से बंधे रहने में न प्रगति है और न कुछ लाभ।”

“परन्तु अतीत यदि सुखकर हो, मधुर हो, तो वह भुलाया नहीं जा सकता।”

“मधुर से मधुर अतीत वर्तमान नहीं बन सकता है। जो अब है, मैं उसी की चिन्ता करती हूँ। जो कभी था उसके विषय में मैं कभी नहीं सोचती।”

“यह कभी कभी तुम खो कहीं जाती हो माया?”

“अपने में।”

“इतनी गहरी हो?”

“नहीं तो।”

“तो फिर?”

“आप जान लीजिये।”

“यह ‘तुम’ से ‘आप’ पर क्यों आगई हो ?”

“इसी में भला है ।”

“इतना दुराव ?”

“नही, एक हल्की सी दीवार ।”

“किस लिये रखना चाहती हो ?”

“आपका आदर बनाये रखने के लिये ।”

“मैं आदर नहीं प्रेम चाहता हूं माया ।”

“प्रेम मांगा नहीं जाता, हो जाता है ।”

मधुकर की आंखे छलछला आई ।

“तुम मायाविनी हो ।”

“आप उस पर मोहित है ।”

“बड़ा दम्भ है !”

“नही, अन्तरदृष्टि है ।”

“यह भी दम्भ है ।”

“नही, विवेक है ।”

“दम्भ और विवेक मे बड़ा हल्का अन्तर है ।”

“आज आप बहस करने पर तुले है ?”

“नही, तुम बड़ी जालिम हो माया ।”

“यह पुरुष कह रहा है, या कवि ?”

“दोनों ।”

“मैं अनुगृहीत हूं ।”

“क्यों ?”

“केवल इसलिए कि मैं किसी को धोखे मे नहीं रख रही ।”

“माया, मेरी भावनाओं से कब तक खेलती रहोगी ?”

“जब तक आप मौका देगे ।”

‘माया’ । मधुकर चिल्ला उठा ।

“क्यों जीजी बहरी हो गई है ?” सुधाकर ने भीतर प्रवेश करते हुए

कहा। थैले में से एक एक कर सब वस्तुएं निकालने लगा। केले, बिस्कुट, पाव रोटी, मक्खन, मिठाई, चाकलेट।

“अरे ! इतना सब किस लिये ?”

“हम तीनों के लिये जीजी”— सुधाकर ने हंसते हुए कहा।

माया दूसरे कमरे से पाव रोटी काटने का चाकू उठा लाई और पतले पतले ‘सलाईस’ काटने लगी।

“जीजी तुम यह ‘सलाईस’ कितने पतले काट रही हो। काश ! हम भी ऐसे काट पाते, यह सब तुम्हारे हाथों की करामात है।”

माया हँस दी।

“मे तुम्हारे लिए एक ऐसा ही प्रबन्ध कर रही हूँ सुधा। तुम मुँह मीठा करवाओ।”

“क्या जीजी ?”

“तुम्हारा ब्याह है सुधा, कल। तुम्हारे भैया ने और मेने तय कर दिया है।”

सुधाकर भाई के सामने एक लड़की की तरह लजा उठा।

“किस के साथ होने जा रहा है जीजी ?”

माया बोली—“अब अधिक मत बनो। तुम्हें पता है वह कौन है।”

“जीजी वह सब तो हो जायगा, पर भैया बड़े हैं ... और उनके रहते हुए ”

मधुकर ने माया की ओर देखा। वह एक क्षण के लिए पीली हो गई। फिर सयत होकर बोली—“तुम्हारे भैया की यही इच्छा है कि तुम्हारा ब्याह हो जाए और बहू घर में आ जाए। सब अस्त व्यस्त हो रहा है, वह घर तो सम्भालेगी।”

मधुकर ने सिगरेट जला ली।

“क्यों माया, कला आश्रम का काम छोड़ देगी ?”

“हाँ, उसने आज ही त्याग पत्र दे देना है। मैंने उसे आज्ञा दे दी है। परन्तु फिर भी आपकी स्वीकृति की आवश्यकता थी, सो आज तक रोक लिया।”

“तुम्हें मेरी ओर से शंका नहीं होनी चाहिए थी माया। जहाँ तुम्हारी इच्छा है, वहाँ मेरी स्वीकृति है।”

सुधाकर ‘स्टोव’ पर दूध गरम कर रहा था।

माया बोलती गई।

“कला बहुत अच्छी लड़की है। ममतामयी सुधाकर की तो पूजा करती है। हर घड़ी इसकी बात, ऐसा है, वैसा है, बहुत अच्छा है। नारी जो गुण पति में चाहती है, वह सब उसे सुधा में दिखाई देते हैं।”

मधुकर भी हंस दिया।

“माया तुम सब कहती जा रही हो, हमारी ओर से भी तो कोई आभूषण कपड़ा, बरात का प्रबन्ध होना चाहिए न।”

“यह आप बरात के लिए चिन्ता क्यों कर रहे हैं। कला के माता पिता तो अलीगढ़ से आयेंगे, वह सेठ धनपति के यहाँ ठहरेंगे और वही से ब्याह का प्रबन्ध करेंगे।”

“ओह ! सेठ साहब तो अभी अभी दावत का निमन्त्रण देने आए थे, उन्होंने नहीं कहा कि दावत किस विशेष कारण से हो रही है।”

“विवाह का संस्कार तो कल होगा। मुहूर्त कल प्रातः का है, फिर पार्टी परसों। क्योंकि बिजली के प्रकाश का प्रबन्ध एक दिन में नहीं हो सकता।”

मधुकर बोला—“सेठ धनपति बीच में कहाँ से कूद पड़े ?”

“वह कला के दूर के मौसा है। यहाँ कोई अन्य नातेदार नहीं है जिस के घर पर यह सब व्ययस्था की जाए।”

मधुकर का मुख कुछ कुम्हला गया। सुधाकर बड़े चाव से बोला—

“कला ने मुझे कभी नहीं बतलाया कि सेठ धनपति उसके मौसा हैं। इतने

बड़े आदमी की वह भांजी है। ओह ! भैया तुम सुन रहे हो ? यह हमारे लिये कितने गर्व की बात है ?”

मधुकर मौन हो गया। एक शब्द नहीं बोला। उसका अपना भाई, बिल्कुल सगा भाई, यह सब कह रहा था। सुधाकर भी रुपये को इतना महत्व देता है। सेठ धनपति में न चरित्र की सबलता है। वह कौन से महान चिन्तक है ? कौन से ऐवरेस्ट विजेता हैं, पेन्सिलिन के आविष्कारक हैं ? उनके पास केवल रुपया है जो उन्होंने लाखों व्यक्तियों के खून से जमा किया है। उसके लिए उन्होंने हजारों व्यक्तियों को धोखा दिया होगा, किसी के वेतन में से भत्ता काटा होगा, कम्पनियों के दूसरे हिस्सेदारों को कम मुनाफा दिखाया होगा, जाली कागज तैयार किए होंगे। विधि की विडम्बना है। वही सेठ धनपति इसके समधि बनने जा रहे हैं। कला भली लडकी है। भोली है। संसार के धोखे फरेब से वह अभी बहुत दूर है। वह नहीं जानती, किसी को कैसे ठगा जाता है। कला को बहू बनाने में मधुकर को कोई ऐतराज नहीं, बल्कि प्रसन्नता है।

माया ने अपना बटुवा उठाया और बोली—“मैं बारह बजे तक आपके दफ्तर फ़ोन करूंगी। तब तक मैं सब प्रबन्ध कर लूंगी। कला के माता पिता को भी सूचित कर दूंगी। सुधा, तुम्हारी ओर से एक आभूषणों का ‘सेट’ मैं खरीद लूंगी।”

“माया उस ‘सेट’ का मोल मैं दूंगा”, मधुकर ने क्रोध से उबलते हुए कहा।

“लाइये, अभी दे दीजिए। मैं खरीद लूंगी।”

मधुकर ने दीवार में लगी आलमारी खोल कर, कुछ रुपयों की एक मुट्ठी माया की ओर फेंकी। नोट धरती पर बिखर गये।

सुधाकर अचम्भित हो गया। माया नोट बीनने लगी।

“भैया, यह आप जीजी पर नाराज क्यों हो रहे हैं ?”

मधुकर ने देखा माया नोट इकट्ठे कर रही है। वह उठ कर बाहर की ओर चला गया।

सुधाकर ने माया के हाथ पकड़ लिए और बोला—

“जाजी तुम क्षमा कर दो भैया अपने में नहीं है।”

“सुधाकर तुम चिन्ता न करो, यह रुपये इकट्ठे करके रख लो, मैं आ रही हूँ। तुम पांच बजे मेरे दफ्तर आ जाना, वही से बाज़ार चलेगे।”

माया मधुकर से बिना बोले चली गई।

: २ :

मधुकर के घर से माया सीधी अपने दफ्तर गई। वहाँ उसका मन काम में नहीं लगा। मधुकर ने उसके मुख पर रुपये इस लिये मारे हैं, क्योंकि वह यह समझता है कि माया रुपयों की भूखी है। वह रुपयों पर ऐसी टूटती है जैसे पक्षियों पर बाज। छी: छी:, पुरुष जब भी अवसर मिलता है अपना यह कुरूप दिखलाने से नहीं चूकता। मधुकर के पिता का छोड़ा हुआ, कन्नाट प्लेस में यह फ्लैट, पच्चास हजार से कम कीमत का नहीं। उसके पिता औसत हैसीयत के आदमी थे। मधुकर ने, सुधाकर ने, सुख से चिन्ता रहित होकर शिक्षा पाई है। वह क्या जाने एक समय खाने पर, दूसरे समय जब खाने के लिए दाना भी घर में न हो, तब क्या होता है? उस समय मनुष्य जगहित, अहित की बात भूल कर अपने खाने की चिन्ता करता है। सब आदर्श धरे रह जाते हैं।

माया की आँखों में वह असंख्य दृश्य घूम गए, जब बनिये ने उधार देना बन्द कर दिया था। माया की माँ कमरा बन्द करके कितना रोई थी। माया माँ को जितनी सान्त्वना देती, माँ उतना ही रोती। वह किसी तरह चुप ही नहीं हो रही थीं। माँ की बेबसी का एक एक आँसू माया के हृदय पर हथौड़े की चोट करता था। उस समय माया की साँसें शरीर तोड़ कर बाहर आजाना चाहती थीं।

मधुकर ने वह अभाव कहाँ देखा है ? वह क्या जान सकता है ? थाली में एक रोटी लेकर माँ बैठती तो बच्चों को झुठलाती रहती । मानो, एक रोटी पन्द्रह मिनट तक खाती रहेंगी । माया का छोटा भाई और बहन सो जाते तो केवल माया उस समय यह देखती । स्थिति समझने योग्य आयु केवल उसकी थी । माया का मन समाज की झूठी श्रृंखलाओं पर विद्रोह कर उठता । वह उन लोगों से भी गए बीते थे, जो सर्व साधारण के सामने भिक्षा तो माँग सकते हैं । माया और उसके परिवार वाले निम्न मध्य वर्गीय समाज की मर्यादा बनाये रखने के लिए अपनी भूख का बलिदान करते । माया को वह दिन भी याद है, जब बिजली का धिल न चुकाने पर उनकी बिजली कट गई थी । बहन और भाई का स्कूल में नाम कटा लिया गया था । माया देहली न आती, नौकरी न करती तो अम्बाला में वेश्या बन जाती ? क्या करती ? आज मधुकर ने उसके मुख पर नोटों की मुट्ठी फेंकी है—पूजीवादी अहंकार ने माया की विवशता पर एक तमाचा मारा है । माया इसका बदला लेगी ।

बड़ी सी मेज़ के सामने माया बैठी अपनी पिछली खिड़की में से झाँक रही थी । बाहर उसने चपरासी को कह रखा था, कि किसी को भी अन्दर न आने दे, सिवाय सेठ साहब के । टेलीफोन की घंटी बार बार बज उठती, परन्तु माया ने एक बार भी 'रिसीवर' नहीं उठाया । मेज़ पर एक बड़ा सा शीशा पड़ा है, उसके नीचे इस वर्ष का कलेंडर, कम्पनी के विज्ञापन के मूल्य और एक छोटा सा पेन्सिल स्केच, शिव पार्वती का । वह मेजर कबाड ने भेंट किया है । कबाड अपने खाली समय में पेन्सिल से स्केच बनाया करता है ।

माया ने देखा, वह स्वयं सीमेट के भव्य भवन के तीसरे मंजिल के कमरे में बैठी है । गर्मियों में वहाँ सेठ धनपति की कृपा से 'कूलर' लगा दिया जाता है जिससे कमरा बिल्कुल ठंडा हो जाता है । सर्दियों में 'हीटर' से गरम रखा जाता है । इसी भव्य भवन के पिछवाड़े में छोटी छोटी

फूस की भोंपड़ियां हैं। वह माया की देखी सुनी, जानी पहचानी हैं। वह कई बार इन भोंपड़ियों में जा चुकी है। यहाँ के रहने वाले अधिकतर मजदूर हैं। कुछ शरणार्थियों के घर साफ़ सुथरे हैं। मजदूर प्रायः अपनी कमाई, शराब, सिगरेट और सिनेमा पर बरबाद करते हैं।

एक दिन इन्हीं भोंपड़ियों में, एक मजदूर-पत्नी प्रसव पीड़ा से चीख रही थी। उसकी चीखें माया तक भी पहुँची थीं। माया सेठ साहब की कार माँग कर कला को ले आई थी। उस बेचारी मजदूर-पत्नी 'चांदी' ने रो रो कर अपना वृत्तान्त सुनाया था कि कैसे उसका पति उसकी ओर लापरवाही करता है। पहले वह स्वयं भी डेढ़ रुपया रोज़ कमाती थी। अब पिछले एक महीने से वह काम पर जाने से लाचार थी। उसका पति उसे पेट भर खाना भी नहीं देता था। कभी बाईं तरफ का पड़ोस और कभी दाईं तरफ का पड़ोस यही उसको प्रायः दो रोटियाँ दे देते। पंजाबी महिलायें दयालु थीं। वह कभी तीसरे चौथे आध सेर दूध दे जातीं। माया उसके बाद इन भोंपड़ियों में बराबर जाने लगी थी। भोंपड़ियों में रहने वाले मजदूर पति उससे बड़े नाराज़ रहते थे। उसके पीछे गालियाँ बकते, सेठ की रखेल कहते, क्योंकि माया के कारण उन स्त्रियों में भी एक संगठन सा हो गया था। वह अपने पतियों की कमाई का कुछ भाग सदैव चाहती थीं। माया ने सेठ साहब से कह कर उस सारे मैदान की सफ़ाई करवा दी थी। कपड़े, और कम्बल बंटवाये थे। कला को भी कभी कभी दवाई बाँटने के लिये ले आती। परन्तु कला का भाव उन मजदूर पत्नियों की ओर प्रायः दया का होता था जिसे देख माया बौखला जाती। सोचती, कला यह दया दिखाने क्यों आती है।

माया इस समय भी उन भोंपड़ियों को देख रही थी। अभी अभी मधुकर ने उसके मुख पर नोटों की एक मुट्ठी मारी है। वह नोट यदि बटोर लाती तो इन भोंपड़ियों में बाँट देती, इन लोगों के वह काम

आते । मधुकर उसे पैसे के लिए इतना लालायित समझता है । दूसरी ओर, प्रेम करने का दम भरता है ।

प्रेम ! माया को एक समय यह वहम था कि कैलाश उससे प्रेम करता है । नहीं । वह भ्रम नहीं था । कैलाश वास्तव में उसे प्यार करता था । वह आगे नहीं बढ़ सका, क्योंकि वह अपने पिता से डर गया । वह कायर निकला । मधुकर भी कायर है । उसमें इतना साहस नहीं कि जीवन की वास्तविकता को वह पूर्णतया समझता हो, वह इससे दूर भागता है । सोचता है, माया भी उसके आदर्श और कल्पना की दुनिया में रहने लगेगी । शायद उस दुनिया में सिवाय सिगरेटों के और खाने को कुछ नहीं चाहिए ।

माया दो बार चाय मंगवा कर पी चुकी है । अभी तक स्वस्थ नहीं हो पाई । मन पर बोझ है, दिमाग में एक बवन्डर ।

सेठ धनपति किवाड़ खोल कर भीतर आ गए । हाथ में दो आभूषणों के डिब्बे थे । कमरे में आते ही माया कुरसी से उठ, खड़ी हो गई ।

“अरे उठने का कष्ट क्यों करती हो, बैठी रहो न ।” सेठ साहब ने हंसते हुए कहा ।

“आज मुझ से काम नहीं हो सका, जी चाहता है छुट्टी लेकर चली जाऊँ ।”

“क्यों ? तबीयत तो ठीक है ?”

“हाँ ।”

“अगर काम में जी नहीं लगता, तो घर चली जाओ ।”

“कल और परसों तो छुट्टी ले रही हूँ, आज कैसे चली जाऊँ ?”

“मैं जो कह रहा हूँ ।”

“काम की कुछ व्यवस्था तो कर जाऊँ । सब कुछ ऐसे छोड़ कर जाने में मुझे स्वयं भी तो उचित नहीं जान पड़ता ।”

“मैं जानता हूँ तुम काम से कभी मन नहीं चुराती। खैर, यह देखो, दो ‘सेट’ लाया हूँ, कला के लिए। अगर तुम्हें पसन्द न आएँ, तो घर भिजवा दूँगे।”

“नहीं जब आप लाए ही हैं, तो मैं नापसन्द क्यों करूँगी।”

माया ने डिब्बे की ओर हाथ बढ़ा दिया, खोल कर देखा, जड़ाऊ कंगनों की जोड़ी, नीचे चार चार डायमंड कट की चूड़ियाँ, लम्बे जड़ाऊ इयरिंग और नेक्लेस। दूसरे डिब्बे में सफेद मोतियों का ‘सेट’। सफेद मोतियों का ‘सेट’ इतना सुन्दर था कि माया का एक मन हुआ वह खुद पहन ले। नहीं, कल कला का ब्याह है, खुद कैसे पहन सकती है।

सेठ धनपति मानों माया के मुख पर होने वाले भावान्तर को पढ़ रहे थे। धीरे से बोले—“यह सफेद ‘सेट’ यदि तुम्हें भी पसन्द हो तो अभी मंगवाये देता हूँ।”

“नहीं अभी मत दीजिये, जब वह फौजी ‘मेस’ का ठेका आपको ले दूँगी, तब।”

सेठ धनपति ने माया की ओर ध्यान से देखा, मानो उसके भाव मुख पर लिखे हैं।

“क्यों, ‘मेस’ के ठेके का प्रबन्ध तो तुम परसों ही कर सकोगी, वह तुम्हारे लिए मुश्किल काम नहीं है। वैसे तुम पिछले डेढ़ महीने से टालती आ रही हो।”

माया कुरसी से उठ कर खड़ी हो गई।

“जी? मैं टालती आई हूँ? आप समझते क्या हैं? शुक्र नहीं करते कि मैंने उस बात को अभी तक छेड़ा नहीं है। अनुकूल वातावरण देख कर ही बात करनी चाहिये। यदि ना हो जाय तो फिर बड़ी कठिनाई पड़ती है। बात को बिगाड़ना आसान है बनाना मुश्किल।”

सेठ साहब ने देखा माया क्रोधित हो रही है तो दाँत निपोरते हुए बोले—“माया यह मोतियों का ‘सेट’ विशेष मँहगा नहीं है, केवल डेढ़

हजार का है। यह तुम कला के ब्याह में मेरी ओर से भेंट स्वरूप ले लो। जब वह ठेका ठहर जाएगा तो जो माँगोगी, दूंगा।”

“सच कह रहे हैं?”

“हाँ, बिल्कुल सच। मैंने इससे पहले कभी तुम से धोखा किया है? एक सौ चालीस रुपये पर तुम इस फ़र्म में नौकर हुई थी। आज चार वर्ष मे साढ़े पांच सौ और कमीशन अलग। एकाएक इतनी तरक्की या तो किताबों में होती है या फ़िल्म में। यथार्थ जीवन में चार वर्षों में एक सौ रुपये से बढ़कर तरक्की नहीं हो सकती।”

“मैं काम भी तो लाख लाख रुपये का करती हूँ।”

“हाँ, माया, तुम मेरा बाँया हाथ हो। तुम्हारी जगह कोई और होता, तो न ही इतना कर पाता और न ही उसमें इमानदारी होती।”

इतनी बातें कहते सेठ साहब के मुख पर परिश्रम के चिन्ह आ गए।

पिछले चार वर्षों से यदि सेठ साहब ने चाहा भी है कि वह माया के शरीर से खेल सकें तो माया ने केवल हाथ पकड़ने से बढ़कर उन्हें कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। आज से चार वर्ष पहले, जब उसका वेतन बढ़ा था, उस दिन की घटना माया को याद हो आई। इसी कमरे में सेठ बैठते थे। एक फाइल में खर्चा अधिक बैठ रहा था। सेठ साहब ‘अकाउंटेंट’ पर झल्ला रहे थे। उसने माया को टोटल “चैक अप” करने के लिए दिया। माया ने हिसाब में ग़लती निकाल दी। कुल जोड़ में वह आदमी एक रकम को दो बार जोड़ता आता था। इसी से खर्च आमदनी से ज्यादा बैठ रहा था। सेठ साहब माया से बहुत प्रसन्न हुए और उसे बीस रुपये की तरक्की मिली। उसी दिन सेठ साहब ने उसे अपने पास बैठ कर चाय पीने के लिए कहा था। वह एकदम तैयार हो गई थी। एक बार भी झिझकी नहीं थी। सेठ साहब की अनुभवी आंखों ने उसी समय देख लिया कि यह लड़की बड़े काम की है। तब से सेठ साहब उसे जहाँ तहाँ अपने साथ ले जाते। फ़र्म का काम अच्छी तरह से होने लगा। विज्ञापन

का मूल्य करने में माया की अपनी विशेषता थी। वह बड़ी से बड़ी दुकानों के विज्ञापन लाने लगी।

सेठ साहब का विश्वास माया पर दृढ़ हो गया। उसका वेतन बढ़ा दिया गया।

माया अनमनी बैठी थी क्योंकि सुबह ही मधुकर ने उससे इतना अभद्र व्यवहार किया है। वह इस अभद्रता का मज़ा उसे चखा देगी। मधुकर ठिकाने लग जाएगा। परन्तु अभी तक उसके दिमाग में ऐसी कोई बात नहीं आई और वह निश्चय नहीं कर पाई।

सेठ साहब ने माया का हाथ पकड़ा और सफेद मोतियों का कंगन हाथ में पहना दिया। सेठ साहब का हाथ पकड़ना जैसे सब मशीन की भाँति होता है। माया को उसमें विशेष अन्तर नहीं लगता। सेठ साहब हाथ पकड़ें, छोड़ दें। माया के शरीर में बिजली नहीं कौधती। विद्युत का संचार नहीं होता।

गले में हार पहनाने को वह आगे बढ़े तो माया ने बीच में रोक कर कहा—“यह क्या ? आप मुझे क्यों पहना रहे हैं ? कला के नाम से चीज़ आई है।”

“तुम ले लो तो क्या हर्ज है ? मैं कला के लिए एक और मंगवाए लेता हूँ।”

माया के ओंठ एक अजीब अदा में सिकुड़ गए।

“नहीं, रहने दीजिए।”

“माया, मैं देख रहा हूँ तुम डेढ़-दो महीनों से मुझ से कुछ खिंची सी रहती हो।”

“नहीं तो।”

“मैं भूठ कह रहा हूँ ?”

“नहीं, आपको भ्रम है।”

“मेरी आँखें मुझे धोखा नहीं देती।”

“कोई काम की बात कहिए।”

सेठ साहब कुरसी से उठ खड़े हुए, खिड़की के पास आ गए। माया भी अनायास कुरसी से उठ खड़ी हुई। यह क्या करने जा रहे हैं सेठ साहब। माया का मन एक क्षण के लिए कांपा।

सेठ धनपति का बाँया हाथ माया की बगल में था। माया अब चतुर हो चुकी थी। वह समझ गई अब सेठ साहब की दृष्टि उसके काम से हट कर उसके शरीर पर अधिक है। शायद डेढ़ हजार का आभूषणों का 'सेट' अभी अभी दिया है, उसका मूल्य लेना चाहते हैं।

यदि माया उन्हें धक्का दे कर अलग हटा दे तो सब बना बनाया खेल बिगड़ जायगा। यदि वह उन्हें मनमानी करने दे ?

सेठ साहब ने झटके से माया को बिल्कुल पास खेंच लिया।

माया धीरे से बोली—“देखिए छोड़ दीजिए, कोई आ गया तो ?”

“तो क्या ? सब के सब मेरे ठुकड़ों पर पलते हैं। मैं इनकी क्या परवाह करता हूँ ?”

“सो तो ठीक है, पर मुझे बड़ी शर्म आएगी। मैं इन लोगों को मुँह कैसे दिखाऊँगी।”

सेठ साहब ने माया को अपनी विशाल बाँह में भीच कर उसका कपोल चूम लिया।

माया के शरीर में घृणा से एक भुर भुरी फैल गई।

छी: ! यह प्रथम बार ऐसी बात हुई थी।

माया हल्के से बोली—“यह आज आपको क्या हो गया है ?”

“माया, मेरे 'सबर' की भी सीमा है। मैं कितने वर्षों से देख रहा हूँ तू हमेशा मुझे दूर रखती है। मैं भी मनुष्य हूँ। आखिर कहाँ तक संयम करूँ।”

“अच्छा अब छोड़ दीजिए।”

“एक शर्त पर।”

“कौन सी शर्त पर ?”

“तुम इस बार पहाड़ मेरे साथ चलोगी।”

“हाँ चलूंगी, वादा करती हूँ।”

“देखो माया, भूल न जाना।”

“नहीं।”

सेठ धनपति ने माया को अपने पंजे से मुक्त कर दिया।

“चलो मेरे साथ ‘लंच’ पर चलो।”

“आज कुछ काम नहीं हुआ है।”

“काम को रहने दो।”

“कल और परसों की छुट्टी ले रही हूँ।”

“तो क्या है ? जाने दो, ‘फर्म’ के लिए तुम अपनी जान तो नहीं दे दोगी।”

“मैं सोचती हूँ जब मैं वेतन लेती हूँ तो मुझे काम भी करना ही चाहिए।”

“गोली मारो काम को। देखो यह पूरा ‘सेट’ पहन लो, और मेरे साथ चलो।”

माया ने वैसा ही किया। बटुए में से पाउडर की छोटी सी डिब्बिया निकाल कर मुख पर लगा लिया और तैयार होकर वह सेठ साहब के साथ चलने को प्रस्तुत हो गई। उसके मन में एक अजीब प्रकार की ग्लानि भर उठी थी। उसके मन में एक बार आया साथ वाली खिड़की में से बाहर छलांग लगा दे, इस जीवन का अन्त कर दे, जिस में केवल कृत्रिमता है। जहाँ वास्तविकता का नाम नहीं।

अब वह यह जीवन अपना चुकी है। इसे छोड़ सकना उसके वश की बात नहीं। वह सेठ साहब के साथ ‘लंच’ पर चली गई।

: ३ :

कला और सुधाकर के ब्याह की पार्टी सेठ धनपति ने अपनी कोठी में दी है। ब्याह तो बिड़ला मंदिर में कला के माता पिता की उपस्थिति

मे सम्पन्न कर दिया गया था। कला की माँ ने कन्यादान किया। सुधाकर को एक मोटर कार भेट रूप में दी। कला को माँ ने गहनो से लाद दिया, मानो वह वर्षों से आभूषण बनवा कर केवल इस घड़ी की प्रतीक्षा कर रही थी।

सेठ धनपति कला के मौसा है। ब्याह अलीगढ़ में न होकर देहली में हुआ तो उनकी ओर से एक दावत का आयोजन होना जरूरी था। कला के माता पिता ने बहुत कहा, परन्तु वह किसी तरह माने ही नहीं। अपने घर पर बड़ी धूम धाम से उन्होंने दावत का प्रबन्ध किया।

सारी कोठी को झिलमिलाते बिजली के बल्बों द्वारा सजाया गया। लॉन के साथ लगी बाड़ में भी बिजली के बल्ब लगाये गये और फुव्वारे में भी रंग बिरंगी रोशनी की गई। हरी, लाल, पीली, अपने आप बारी बारी से पानी में चमकने वाला प्रकाश। बिजली के दो गोलाकार उन्होंने विशेष रूप से लगवाए थे जिनके नीचे माननीय और विशेष अतिथियों को बिठलाने का प्रबन्ध था।

कोठी के फाटक से लेकर 'लॉन' के रास्ते तक लकड़ी के स्टेडों पर बड़े बड़े बल्ब लगे थे। वह इतने चमकते कि रात्रि के गाढ़े अन्धकार में भी दिन का सा प्रकाश लग रहा था। मुख्य 'सिविल' अधिकारी, कुछ छोटे छोटे देशों के विदेशी राजदूत तथा राजनैतिक पार्टियों के अध्यक्ष, प्रधान सैनिक अफसर तथा बड़े बड़े व्यापारी वहाँ उपस्थित थे। कुछ लोग केवल 'कॉकटेल' के लिए आए थे। वह साढ़े नौ दस बजते चले गए। बाकी खाने के लिए ठहर गए।

महिलाओं की शान किसी से कम नहीं थी। शादी की दावत में, फिर सेठ धनपति के घर, भला वह शृंगार करने में ज़रा सी कमी भी क्यों होने देती। सभी एक से एक बढ़कर, साड़ियाँ, गरारे और गाऊन पहने थी। सदा पर्दे में रहने वाली सेठानी आज सोने की तारों वाली जरी की साड़ी पहन कर अतिथियों का स्वागत कर रही थी। दूध सी सफेद सेठानी का शरीर तीन मन से कम भारी नहीं था, परन्तु हीरे जवाहरातों

से जड़ी, वह बल्बों के प्रकाश में जगमगा रही थीं। उनकी बड़ी बहन कला की माँ केवल एक हल्का सा आभूषणों का 'सेट' पहने थी। बंगलोर सिल्क की सफेद साड़ी उसके मुख पर सौम्यता एवं सभ्यता की अपूर्व शोभा बढ़ा रही थी। कला दुल्हन के वेश में स्वर्गलोक की अप्सरा सी लग रही थी। सुधाकर सफेद रेशमी अचकन और तंग सफेद पयजामा पहने था। सुधाकर के मित्र 'पेग' भर भर कर पी रहे थे, मानों फिर कभी उन्हें पीने का अवकाश नहीं मिलेगा। शायद संसार भर की शराब आज ही समाप्त हो जाएगी। सुधाकर भी उनका साथ दे रहा था।

मधुकर भी अपने अखबारी दुनिया से आए हुए मेहमानों में व्यस्त था। समाचार पत्रों के संवाददाता और फोटोग्राफर तस्वीरें खेंचने में नहीं चूक रहे थे। सेठ धनपति के इशारे पर वह ऐन मौके पर तस्वीर खेंचने के लिए आगे बढ़ जाते। माया सेठ साहब के साथ या सेठ साहब किसी राजदूत के साथ, तस्वीर में यही दो बार बार सामने आते। सेठ साहब ने अपने एक मात्र पुत्र एवं उत्तराधिकारी को आज प्रथम बार अपने मिलने वालों तथा और अधिकारियों से परिचित करवाया। गणपति में अपनी माँ की सी सुन्दरता थी और बहन की सी कोमलता। उसका सौन्दर्य लड़कियों को भी मात देता। माँ के लाड ने उसे बिल्कुल फूहड़ ही रहने दिया था। वह मुंह बाए खड़ा था।

माया पुरुषों के झुरमुट के स्वागत में लगी थी। वह सफेद जार्जेट की सितारों से जड़ी कामदार साड़ी पहने थी। उसके कानों में, गले में, हाथों में वही आभूषण थे जो सेठ धनपति ने परसों दिये थे। बौद्ध भिक्षुणियों जैसा उसने जूड़ा बनाया था जिसके चारों तरफ सफेद मोतियों का हार लपेटा हुआ था। जड़ाऊ हीरे की छोटी सी 'क्लिप' उसने गर्दन से ज़रा ऊपर को लगा रखी थी। उस 'क्लिप' पर ज़रा चमक की किरण जाती तो दूसरों की आँखों में कौंध कर रह जाती। माया के मुख के 'मेकअप' से इस समय यह बतलाना कठिन था कि उसकी त्वचा का कौन सा रंग है। गेहुँआ 'मेकअप', सुन्दर लम्बे तिलक की तरह का माथे पर

टीका, बड़ी बड़ी आँखें और मुख पर एक अजीब मुस्कान जिसमें हास्य और व्यंग्य का पुट था। यह मुस्कान माया के जीवन का अंग बन गई थी। इस समय वह विशेष रूप से सेठ धनपति के लिए फौजी ठेके का प्रबन्ध कर रही थी। अभ्यास द्वारा उसे मुस्करा मुस्करा कर बात करने की आदत ही हो गई थी।

सेठ धनपति बार बार माया से कह जाते—तुम वहाँ नहीं गई, अमुक साहब अभी तक तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़े हैं।

अनुमान से मेहमान कहीं ज्यादा बढ़ गए थे। पीने वाले पी भी अधिक रहे थे। दो दर्जन 'स्काँच' दो दर्जन 'शम्पेन' और आधा दर्जन 'शेरी', छः बोतल 'जिन' और छः बोतल 'पोर्ट' का प्रबन्ध था। 'साइडर' की दर्जनों बोतलें थीं। कोकाकोला भी कम न था। फिर भी साढ़े आठ बजे तक सारी 'स्काँच' और 'शम्पेन' समाप्त हो चुकी थी। उन्ही विलायती बोतलों में देसी शराब का दौर चलने लगा।

अब हिन्दी में बातचीत करने का फ़ैशन चल पड़ा है। उसी के फलस्वरूप सेठ धनपति ने अपनी पत्नी की कैद की अवधि का अन्त कर दिया है। उसे मुक्त कर दिया है कि वह बाहर सभा सोसाइटी में बैठे। आज बड़े बड़े अफसरों की पत्नियाँ सेठानी जी से बड़ी नम्रता से पेश आ रही हैं। सेठानी की भी खुशी का ठिकाना नहीं, मानों उनकी भांजी का नही, अपनी सगी लड़की का ब्याह हो रहा हो।

आइ०सी०एस० अफसरों की पत्नियाँ एक अलग अपना जमघटा बना कर बातचीत, टीका टिप्पणी कर रही थी। फ़ौजी अफसरों की पत्नियों को भी मानो आज ही सबकी तरक्की के विषय में बात कर लेनी है। एक मेजर की पत्नी बता रही थी कि उनके पति अगले महीने से कर्नल बन जायेंगे। दूसरी महिला हीन भावना से क्यों पीड़ित रहे। वह कोई विशेष 'कोर्स' की बात करने लगी। 'सिविल' अफसरों की पत्नियाँ फ़ौजी पत्नियों को चटकीला, भड़कीला और 'चीप' समझती। उनसे बात न करतीं। फ़ौजी पत्नियाँ सोचती, यह 'सिविल' वालों का दिमाग किस

बात पर चढा हुआ है ? यह घमंड किसे दिखाती है ? इनके पाँत, पीले मेढ़कों जैसे चेहरे वाले, ऐनक पहने, झुकी कमर वाले, उन्होंने बहुत देखे हैं। यह महिलाये भी कैसी हैं, न कपड़ों में चटक भटक, न गाढ़े चलते रंगों का चुनाव। बुढ़ियों की तरह सफेद और हल्के रंग पहन आई हैं, मानो शादी की दावत नहीं है, मातमपुर्सी करने चली आ रही हैं। व्यापारियों की पत्नियाँ तो बाहर ही बहुत कम निकलती। यदि कुछ आती भी तो आभूषणों से लदी। किसी वर्ग के अफसरों की पत्नियाँ तो उनसे बात करने में भी अपनी मान हानि समझती।

कला सिमटी सी, कभी विमला से बात करती, कभी ऐलिस से। ऐलिस को तो शराब पीने से फुर्सत नहीं थी। ऐलिस और उसका मंगेतर एक कोने में 'पेग' पर 'पेग' चढ़ाये जा रहे थे, मानो फिर देहली भर की शराब समाप्त हो जाएगी। आज उन्हें मुफ्त की मिल रही थी। ऐलिस मन ही मन कला को आशीर्वाद दे रही थी।

माया जीजी को फुर्सत नहीं। कला ने अपनी माँ को समझाया। माया जीजी ही यहाँ उसकी देखभाल करती रही हैं। माया जीजी ने ही ब्याह ठहराया है, सब प्रबन्ध किया है। मौसा को यह सुभाव दिया है कि वह ऐसी सुन्दर और बड़ी पार्टी की व्यवस्था करें। कला ने माँ को समझा दिया कि उसकी पुरानी मोटर अब काफी पुरानी हो चुकी है, वह माया को भेंट कर दी जाए। बेचारी के पास कोई मोटर नहीं। कला की माँ पहले तो आनाकानी करती रही, फिर बोली, "कला यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो ठीक है, तुम्हारे हाथ से मुझे कुछ दान तो देना ही था, तुम उस मोटर को हाथ लगा कर दे दो। चलो यह दान हो जाए, तुम्हारी तरफ से।"

कला का मन अपनी स्नेहमयी माँ के लिए घृणा से भर उठा। छी: छी:, वह जीजी को दान देगी ? उसी स्नेहमयी जीजी को, जो उसे अपनी छोटी बहन से बढ़ कर प्यार करती हैं।

रात्रि के ग्यारह बज गए। मेहमानों की भीड़ छँटने लगी थी।

सेठ धनपति ने एक होटल से ही बैड का प्रबन्ध किया था। बार बार बैड पर कोई अंग्रेजी धुन बज उठती। आधुनिक कहलाने वाले दो चार जोड़े पक्के फर्श पर जा कर नाचने लगते। मधुकर एक ओर खड़ा था। अभी तक नाचा नहीं था। उसे नाचना आता भी न था।

कबाड एक दूसरे सैनिक की पत्नी को लेकर दो बार नाच चुका था। इसबार वह सोच रहा था माया से कहे कि श्रीमती मेहता पर उसकी दृष्टि गई।

श्रीमती मेहता अभी इतनी ताजी लग रही हैं मानो मोटर से उतरी हैं। 'शेरी' के एक दो छोटे पैमानों ने उन पर कोई असर नहीं किया। उनके बालो में लगे फूलों में से कोई नहीं मुरझाया। श्रीमती मेहता के पति डाक्टर हैं। प्रायः उच्च अधिकारी और बड़े बड़े व्यापारी उनके मरीज हैं। बहुत से तो, सिर दर्द होने पर भी उनके घर चले आते हैं। दवाई लेने, श्रीमती मेहता से दो बात करने।

डाक्टर मेहता भी कहते हैं—“पत्नी हो तो कमला, तुम्हारे जैसी। ‘प्रेक्टिस’ में चार चाँद लगा दे।”

श्रीमती मेहता पति की इस बात पर ज़रा रुष्ट होकर कहती है—“तुम्हें लाख बार समझाया, कमला नहीं कमलेश। कमला पुराना नाम है, मेरी माँ पढ़ी लिखी नहीं थी, उसने शरत तथा प्रेमचन्द का एक ‘नावेल’ नहीं पढ़ा था।”

डाक्टर मेहता पत्नी के इस लम्बे चौड़े उत्तर पर ‘ही ही’ कर हँस देते।

श्रीमती मेहता कबाड को समाज का एक सफल, सदस्य मानती हैं। उनका विचार है किसी भी सभ्य समाज में महिलाओं का कोई उचित आदर सम्मान करता है तो कबाड। श्रीमती मेहता ने देखा कबाड माया से बात करने के प्रयत्न में है, परन्तु वह उसकी ओर बढ़ी तक नहीं। उससे बात करने की फुर्सत ही उसे नहीं मिल रही।

श्रीमती मेहता कुमारी सिन्हा से बातचीत कर रही थी। पास में

गणपति भी खड़ा था, बाईस तेईस वर्ष का सुन्दर फूहड़ युवक, सेठ धनपति का उत्तराधिकारी और एक मात्र पुत्र। श्रीमती मेहता मेजर कबाड के पास चली आई।

“कहो कमलेश कैसी हो?”

मेजर कबाड के इस सम्बोधन से वे चौकी नहीं। उन्हें अनुभव हुआ मानो वह चालीस वर्ष से एकाएक चौदह बरस की हो गई हैं।

“अच्छी हूँ। देखती हूँ आज माया को हम लोगो से बात करने की फुर्सत नहीं।”

“कमलेश, तुम तो मुझ पर एक रहस्य का उद्घाटन कर रही हो।”

“क्यों?” श्रीमती मेहता की आँखें हँस रही थी।

“क्या एक नारी भी दूसरी से बात करने को उत्सुक रहती है?”

“क्यों नहीं।”

“पहली बार सुना है। खैर आओ थोड़ी ‘पोर्ट’ और लो।”

“नहीं, तुम पीओ, मैं तो अब और न लूंगी।”

“बस, इतने में ही ‘आउट’? वह देखो रमा और सुरेश अभी भी पिए जा रहे हैं।”

“‘शैरी’ और ‘पोर्ट’ भी बहुत है। सुना है ‘स्कॉच’ और ‘शम्पेन’ खत्म हो चुकी है, और अब तो उन्ही बोतलो में देसी का दौर चल रहा है।”

मेजर कबाड के जबड़े फैल गए। बिजली के प्रकाश में वह घाव चमकने लगा। श्रीमती मेहता के कल्पनाशील मस्तिष्क में केवल यह विचार आया कि यह कबाड खलनायक बन सकता है नायक नहीं। आज शरत या प्रेमचन्द इसे देखते तो कैसे चित्रित करते। शायद वैसे ही जैसे वह सोच रही है।

“किसने कहा तुम से कमलेश? मैं अभी अपना ग्यारहवाँ ‘बड़ा’ समाप्त करके चुका हूँ। खालिस ‘स्कॉच’।”

“बड़ी ‘कपैसिटी’ है। उधर देखो श्रीवास्तव किस बुरी तरह बेचारी ऐलिस को खींच रहा है, नशा अधिक हो गया है।”

“नशा केवल श्रीवास्तव को ही नहीं उस छोकरी ऐलिस को भी है। इसने भी कम नहीं पी और इसका मंगेतर जॉन तो उस कोने वाली मेज़ पर ज्यों शाम के साढ़े सात से बैठा है, बस पीये जा रहा है। उसे तो कन्धे पर उठा कर किसी गाड़ी पर लाद कर घर भिजवाना पड़ेगा।”

श्रीमती मेहता के मुख पर घृणा फैल गई। ओठ अपने आप सिकुड़ गए।

“ऐलिस को न जाने बुलाया किसने है। मैं तो ऐसे लोगो के साथ मिलना जुलना पसन्द नहीं करती। यह माया भी जैसे आकाश से टपक पड़ी है। पिछले दो तीन साल से इसे देख रही हूँ। पहले इसका नाम भी किसी ने नहीं सुना था।”

कबाड ने देखा श्रीमती मेहता नारी सुलभ ईर्ष्या से जल रही हैं। ईर्ष्या रूपी अग्नि में घी छोड़ना कबाड ने अपना कर्तव्य समझा।

“सुना है बहुत अच्छे घर की नहीं है। केवल यह सेठ धनपति की वजह से, धरती से उठा कर आसमान पर बैठा दी गई है। अब तो किसी विदेशी पार्टी में भी जाओ, जहाँ भी देखो, माया पहले नज़र आएगी बाद में कोई और। माया के बिना कोई उत्सव, समारोह, उद्घाटन, शिलान्याय, कुछ भी तो पूरा नहीं होता। सबसे बड़ी ख़ूबी कमलेश जो इस लड़की में है कि यह प्रत्येक समाज में बैठ कर सहज से बातचीत कर सकती है, जो कि साधारण लड़कियों के लिए बड़ा कठिन है।”

“बस भी करो प्रशंसा के पुल बाँध रहे हो।”

दूसरी ओर से हल्ला सुन कर वह भी उधर देखने लगे। काली अचकन वाले साहब जो कि एक प्रसिद्ध दैनिक पत्र के प्रधान संपादक थे, नशे में कुरसी से लुढ़क रहे थे।

माया नहीं हिली। वह अपने स्थान पर ही जमी रही। मधुकर अवसर पाकर उसके पास आया।

“माया ! मुझे क्षमा कर दो। परसों के अभद्र व्यवहार के लिए मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। मुझे अफसोस है। क्रोध में मैं यह क्या कर बैठा हूँ।”

माया ने गर्वित मोरनी की तरह जो मुडेर पर बैठी हो और नीचे की ओर गर्वभरी दृष्टि से देख रही हो, मधुकर की ओर देखा।

“माया ! उत्तर दो माया, मैं आत्म ग्लानि से जल रहा हूँ।”

बैड पर ‘रम्बा’ बजने लगा। संगीत बड़ी तेज गति का था। बहुत से जोड़े जल्दी जल्दी नाचने लगे। माया स्थिर खड़ी थी। कबाड और श्रीमती मेहता भी नाच रहे थे। मधुकर सामने याचना कर रहा था।

माया ने कोई उत्तर नहीं दिया परन्तु मधुकर के याचना भरे स्वर ने उसे द्रवित कर दिया। वह कोमल हो गई। एकाएक किसी ने सारी बत्तियाँ गुल कर दी।

मधुकर ने जोर से माया का हाथ दबा दिया।

माया को लगा वह किसी सहारे के बिना खड़ी न रह सकेगी। पिछले दो दिन से वह एक क्षण भी सोई न थी। वह मधुकर की बाँह का सहारा लेकर खड़ी हो गई।

बत्तियाँ फिर जगमगा उठीं। माया को इस स्थिति में खड़े मेजर कबाड तथा सेठ धनपति दोनों ने देखा। वह एकदम संभल गई। यह क्या ? वह लोग क्या सोचेंगे, माया कितनी कमजोर है।

“माया तुमने मुझे क्षमा कर दिया ?” मधुकर कह रहा था।

“मैं कौन होती हूँ क्षमा करने वाली ?”

“यह तो तुम अभी भी नाराज हो।”

“मेरी नाराजगी का क्या मूल्य ?”

“क्यों नहीं, मुझसे पूछ कर देखो माया।”

“क्या पूछूँ ?”

“ओह ! तुम्हारे पाव छू दू, सब के सामने ? तब माफ करोगी ?”

“क्यों, अभी मुझे अपमानित करने में आपने कोई गुजाइश छोड़ी है ?”

माया की आँखों में व्यथा झलक आई। सहसा उसे उत्सव में कैलाश की याद हो आई। उसके पिता की मृत्यु न होती, तो माया और

कैलाश का विवाह भी ऐसे ही हो जाता, जैसे सुधाकर और कला का हुआ है। माया की माँ भी कला की माँ की तरह चिन्तामुक्त हो जाती, कन्यादान लेती, माया का जीवन सुखमय होता। सेठ की भृकुटियों का, मैनेजर की तेवरियों की चिन्ता उसे न होती। माया को जीवन भर शायद इतने छल प्रपंच करने का अवसर न मिलता और वह सुखी गृहिणी बन कर रहती।

“माया आज सारी शाम तुम छिपती रही हो। चलो, यह ‘डांस’ तुम मेरे साथ करो। आज एक बार भी तुमने अवसर नहीं दिया।”

माया मधुकर के प्रश्नों से उकता चुकी थी। उठकर कबाड के साथ नाचने लगी। मधुकर से धीरे से कहती गई — “आशा है तुम बुरा न मानोगे।”

श्रीमती मेहता ने कुमारी सिन्हा को चुटकी काटी। कला ने सुधाकर की ओर देखा और दोनों मुस्करा दिये।

कबाड माया के साथ संभावित निकटता से नाच रहा था। माया अपने हृदय की कड़वाहट को मिठास में परिणित करने के लिए एकाएक खिलखिला दी।

नाचने वाले फ़र्श के ऊपर बिजली के बल्बों का गोलाकार लगा था। माया कबाड के भयानक साँवले मुख को देख रही थी। कबाड के मुख से तीखी शराब की दुर्गन्ध आ रही थी। आज से चार वर्ष पहले माया इस तरह नाचती तो उसे मत्तली हो आती। परन्तु आज संगीत की लय के साथ साथ उसके पाँव भी थिरक रहे थे। मधुकर ने क्षमा माँग कर उसके ‘अहं’ को प्रसन्न कर दिया था।

कबाड ने माया को और भी सटाते हुए कहा—“यह तुम इतनी दूर क्यों रहती हो?”

“तुम असम्य जानवर हो कबाड।”

“यह ‘कौम्पलीमेंट’ है माया।”

“वह कैसे?”

“तुम्हारे जैसी लड़कियाँ केवल जानवरों को पसन्द करती हैं।”

“क्यों ?”

“वह दूसरे पतियों की तरह पालतू सियार नहीं बन सकते।”

“सच कहते हो। वह पति क्या जिसकी नकेल पत्नी के हाथ में हो।”

“पर माया तुम जैसी पत्नी हो तो पति न भी नकेल देना चाहे तुम ज़बरदस्ती उसे खेंच लो।

“नही, यह अन्याय है। खैर, तुम्हारी इच्छा है जैसा तुम सोचो इस समय ठीक है। मैं थक चुकी हूँ, अब ज्यादा बात न कर सकूंगी।”

“तुम अब भी थकी नहीं लग रही।”

“धन्यवाद।”

“चलो, तुम्हें घर पहुँचा दूँ।”

“श्रीमती मेहता से आज्ञा ले लो।”

“ले ली।”

“कैसे ?”

“मेरी इच्छा के विरुद्ध वह कभी नहीं सोचतीं। जो मैं सोचूँ, वही वह सोचती हैं।”

“बड़ी मित्रता है।”

“हाँ, तुम क्यों ईर्ष्या कर रही हो ?”

“नारी का स्वभाव जो ठहरा।”

“यह तुम अपने वर्ग की कमज़ोरियाँ साफ़ साफ़ मान क्यों लेती हो ?”

“छिपा कर क्या होगा।”

“तुम दूसरी नारियों से भिन्न होने का प्रयत्न करती हो।”

“सच कहते हो ?”

“इतनी स्पष्टवादिता अच्छी नहीं होती माया।”

“इस संसार में स्पष्ट वक्ता कोई नहीं।”

“मे तो हूँ ।”

“भूठा दम्भ है ।”

“तुम पागल हो ।”

“जब कोई युक्ति न रह जाए, तब दूसरे व्यक्ति को पागल ठहरा दिया जाता है ।”

“देखो भगड़े मे, समय क्यों बरबाद करती हो । आज तुम बहुत सुन्दर लग रही हो ।”

“यह सुन्दरता के पारखी तुम कब बने ?”

“जब से तुम सुन्दर दीखने लगी ।”

“देखो तुम मेरा अपमान कर रहे हो ।”

“तुम क्या चाहती हो कि मैं तुम्हारी इस बात पर विश्वास कर लू कि इतनी छोटी सी बात पर नाराज हो गई हो ?”

“हाँ, और मैं तुम्हे इस बात का दंड दूगी ।”

“क्या ?”

“तुम्हें मुझे घर पहुँचाना होगा ।”

“सेठ साहब मुझे ‘शूट’ न करवा देगे ?”

“नहीं, सैनिक तुम हो, सेठ साहब नहीं ।”

“सैनिक होने से सुन्दरी हाथ में आए, यह कोई जरूरी बात नहीं ।”

“सेठ होने से सुन्दरी दूर हो जाती है, सुरा पास होती है ।”

इस बार कबाड हँस दिया । वह संगीत धुन बन्द हो गई ।

जोड़े फर्श छोड़ कर वापिस अपनी जगहों पर लौट आए ।

मधुकर और शराब पी रहा था । सुधाकर पास खड़ा था । कला अपनी माँ से मिल रही थी, शायद जाने के लिए तैयार थी । माया भी कला से मिली । बोली—

“सदा खुश रहो, सौभाग्यवती रहो ।”

कला माया के गले से लिपट गई ।

“जीजी भूल मत जाना, कभी भूले भटके मुझे मिलने आ जाया करना ।”

“अरे ! रोती क्यों है ? मैं आया करूंगी । परन्तु अभी तो तुम काश्मीर जा रही हो ।”

“तो क्या, काश्मीर से लौट आऊँगी, तो आना ।”

“अच्छा ।”

माया के जाने से पहले कला की माँ ने मोटर के विषय में कह दिया—
“कल सुबह ही कला माया के नाम मोटर करवा देगी ।” माया कृतज्ञता से झुकी और कला की माँ के पावें छू लिए । कला की माँ बोली—

“मेरा कोई बेटा नहीं, तुझे अपनी बहू बनाती ।”

सेठानी पास खड़ी थी । बोली—

“माया देवी बहुत अच्छा काम करती हैं । सेठ जी भी कह रहे थे, जब से यह आई हैं, फ़र्म को लाभ ही लाभ है ।”

माया ने सेठानी को भी नमस्कार किया और मेजर कबाड के साथ धीरे धीरे ‘लान’ से बाहर चली गई ।

माया कबाड से बोली—

“कैसी रही यह शादी ।”

“बहुत अच्छी । सुधाकर कभी किसी लड़की को लेकर और कभी किसी लड़की को लेकर क्लब जाया करता था । अब कम से कम स्थिर तो हो जायेगा ।”

माया ने एक गहरी साँस लेकर कहा—“हाँ, मैं भी यही आशा करती हूँ । कला एक अच्छी और सीधी लड़की है ।”

“ब्याह बहुत भटपट हुआ ।”

“क्यों ?”

“एक वर्ष भी नहीं लगा ।”

सुधाकर को यहाँ आए केवल छः महीने हुए हैं । परन्तु वह उन व्यक्तियों में से है, जो परिचय को कुछ घंटों में ही बढ़ा लेते हैं और फिर

एक दम अटूट बना लेते हैं ।

मेजर कबाड ने मोटर का दरवाजा खोलते हुए कहा—

“आज न जाने तुम मुझ पर कृपा क्यों कर रही हो, क्या रहस्य है ? मैं नहीं समझा ।”

माया मुस्करा दी, मौन रही । रास्ते भर दोनों में से कोई भी नहीं बोला ।

: ४ :

आज माया आफिस से सीधी घर आई थी । अप्रैल का अन्त था । दिल्ली का तापमान शीघ्रता से बढ़ता जा रहा था । अभी तक संध्या को ठंडे पानी से स्नान करने वाला मौसम तो न आया था, परन्तु फिर भी वातावरण में घुटन थी, उमस थी । ठंडी हवा तन को सुहाती थी ।

माया कुछ उदास थी । आज रात्रि को साढ़े नौ बजे उसे मेजर कबाड के साथ खाना खाने जाना था । ऋतु के चमत्कार के उपलक्ष में भोज था । अप्रैल की हवा में फूलों की सुगन्ध थी, मदमाती गरमी थी, और मन को संसार की चिन्ताओं से मुक्त कर उन्मत्त बना देने वाली शीतलता थी ।

जब से कला ब्याह कर काश्मीर गई है, माया का जीवन घर पर बिल्कुल एकाकी हो चुका है । बिन्दिया माया के पास अधिकतर बैठी रहती । सुबह के नाश्ते को छोड़ माया के लिए और किसी समय भी घर पर भोजन नहीं बनाना पड़ता । बिन्दिया जानती है, कमरे की देखभाल करने के लिए और अपने साथ, समय असमय किसी का सहवास अनुभव करने के लिए ही बिन्दिया को रखा हुआ है ।

खाना तो प्रायः माया बाहर खाती है ।

माया को उदास देख बिन्दिया ने कहा—“चाय लाऊँ ?”

अलसाया सा उत्तर दिया माया ने—“नहीं नींबू का शरबत बना लाओ ।”

बिन्दिया शरबत बनाने चली गई। एक पत्र आया था, बिन्दिया ने वह माया को दे दिया। पत्र भारी था, पता पढते ही माया समझ गई कला का है।

गुलमर्ग

२५ अप्रैल

प्रिय जीजी,

मैं बहुत दिनों से सोच रही थी कि तुम्हें पत्र लिखूंगी। एक तुम हो कि दो पंक्तियाँ भी नहीं लिखी। तुम सोचती होगी, मेरी शादी हुई मैं नहीं जगह गई हूँ, पत्र मुझे लिखना चाहिये था।

खैर, मैंने पहले भूल की है तो अब उसका सुधार कर रही हूँ। तुम कभी सोच नहीं सकती होगी कि मैं भी इतनी बदल सकती हूँ। पल पल क्षण क्षण तुम्हारे पर निर्भर रहने वाली एकाएक सबल कैसे हो उठी है। पति का सहारा पा जीजी को पत्र न लिखा।

जीजी ! काश्मीर के अपने इस 'ट्रिप' से मैं बहुत खुश हूँ। तुम कहोगी कि ब्याह के बाद जो लड़कियाँ पति के साथ वही जाती हैं, उनकी यही अनुभूति होती होगी। नहीं, काश्मीर देवताओं की अलकापुरी है। यहाँ प्रकृति अपने पूर्ण यौवन को प्राप्त है और वह उसका चिर यौवन है जो शायद कभी भी समाप्त नहीं होगा। प्रकृति की अनुपम छटा देख कर कभी कभी मैं आत्मविभोर हो उठती हूँ। यहाँ पहाड़ियों की चोटियों पर दूर दूर बरफ पड़ी हुई है, घरों की छतों पर भी बरफ है और चिनार के पेड़ अति सुन्दर लग रहे हैं। दूर 'सनशाइन' की प्रसिद्ध चोटी चाँदी जैसी चमक रही है। सुधा स्केटिंग करने गया है। मैं तुम्हें पत्र लिखने बैठी हूँ।

जीजी ! मैं भी स्केटिंग करती रही हूँ। मैंने स्केटिंग अभी अभी बन्द की है। पिछले चार-पाँच दिनों से। क्यों ? जीजी... यहाँ तुमसे इतनी दूर बैठे... मुझे लाज आती है बताते। मेरा हृदय धड़क रहा है, मुख लाल हो गया है, यदि मैं उठ कर शीशे में देखू तो मुझे स्वयं पता चल

जायगा। जीजी ! यदि तुम पास होती तो, न जाने मुझे कितनी लज्जा आती। पत्र लिखना आसान है। अब मैं इससे अधिक खुले शब्दों-में नहीं कह सकती। देखो, अभी तुम्हें मेरी कसम—मेरी माता जी को न लिखना। मैं उनसे जब मिलूंगी, तो वह स्वयं ही जान जाएंगी। सुधा मुझे कह रहा था, वह लिखेगा। मैंने मना कर दिया है।

जीजी ! यहाँ इतने फूल हैं कि मुझे तुम्हारी याद ही आती है। तुम तो देहली जैसे स्थान पर भी फूल मोल लेती रहती हो। यहाँ भी मोल ही मिलते हैं, परन्तु गुलाब का आकार देहली वाले गुलाब से चार गुना है। कहीं अनार के फूल, गुलाब के, चमेली, 'स्वीटपीस' के। शालीमार बाग में इतने फूल हैं, तुम सोचोगी कि तुम फूलों की नगरी में आ गई हो। यहाँ अप्सराएं हैं, फूल हैं, हरे पहाड़ों, आकाश छूते हुए चिनारों के ऊपर नीला स्वच्छ गगन है। हम लोग श्रीनगर पहले रहे थे। एक 'हाऊस बोट' में। यानी नाव में ही घर होता है। नदी के अन्दर सुन्दर सुसज्जित घर। जीजी, मेरा जी चाहता है तुम भी एक बार यहाँ आओ। यह जगह देखने योग्य है। यहाँ की सब वस्तुएं अद्भुत हैं। हमारे पहले दिन ही, एक स्त्री शिकारे में फूल भर कर जा रही थी, गुलाब के बड़े बड़े फूल। उसके अपने गाल भी गुलाब जैसे थे। मुझे वह देखने में बहुत अच्छी लगी। परन्तु जीजी, उसके तन पर जो कपड़े थे, उससे चिथड़े भी अच्छे होते हैं। उसे देखकर तुम्हारा विचार आ गया, कि तुम होती, तो फूल खरीदने के दामों के बदले शायद उसे कपड़े देती। इसीलिए मैंने भी, उसे अपनी शाल दे दी। सुधाकर ने एक बार मुझे डांट दिया कि वह शाल मुझे नहीं देनी चाहिए थी। शायद वह पुरुष का दृष्टिकोण है। मैं सोचती हूँ, हम लोग घुड़सवारी पर रुपया बरबाद कर सकते हैं, तो एक स्त्री को जो नंगी हो, उसे भी कपड़ा दे सकते हैं। यह दया की भावना नहीं जैसा कि तुम समझती हो, मैं वास्तव में ऐसा अनुभव करती हूँ जीजी। तुम्हारे

सम्पर्क में रहते रहते कुछ तुम्हारी भावनाएं भी मुझ पर प्रभाव कर गई हैं। दूसरे का दुःख देख कर मेरा हृदय भी द्रवित हो उठता है जीजी।

पुरुष का भुकाव निजी सुख की ओर अधिक होता है, शायद इस-लिये कि प्रकृति भी उसे स्वार्थी होने में सहायता करती है। एक नारी को प्रकृति भी दूसरों पर मर मिटने की प्रेरणा देती है। बलिदान उस का स्वभाव बन जाता है।

सुधा मेरा बड़ा ध्यान रखता है। कभी कभी मैं सोचती हूं, इस देवलोक में, सुधा जैसे पति के साथ मैं स्वर्गीय सुख का उपभोग कर रही हूं, यह कही एक स्वप्न तो नहीं, जो जल्द ही टूट जाएगा ?

जीजी ! यहाँ लोगों की आर्थिक दशा इतनी गिरी हुई है कि तुम कल्पना नहीं कर सकतीं। हर चार कदमों पर नदी नाले बहते हैं, फिर भी यह लोग महीनों नहीं नहाते। स्त्रियाँ शिकारों में भर भर कर सब्जी बेचने को लाती हैं। इनके लाल, हरे, पीले, लम्बे लम्बे चोले इनके शरीर पर बहुत सुन्दर लगते हैं। सौन्दर्य तो जैसे इस घाटी की विशेषता है। जड़ चेतन, सभी सुन्दर हैं। ऊन से लदी भेड़ें मिमयाता हुई बकरियाँ, भूरी, चुस्त और तेज चलने वाले खच्चर तथा टट्टू। हरी घास के बड़े बड़े मैदान, मीठे शीतल जल के झरने, वैरीनाग की मच्छलियाँ, ओह जीजी, काश ! मैं डाक्टर न होकर कवियत्री होती तो सब विस्तार से तुम्हें लिखती, कि मैं क्या क्या देखती हूं। अब तो मुझ में इतनी शक्ति भी नहीं कि तुम्हें लिख सकूँ, मैं यहाँ क्या क्या देखती हूं।

जीजी ! मैं सोचती हूं, देखो हंसना मत, एक बात बतलाने जा रही हूं। बिल्कुल मेरी, निजी अनुभूति है। एक नारी...अधूरी रहती है, जब तक वह एक पुरुष को आत्म समर्पण न कर दे। मैं जानती हूं, तुम पुरुषों के प्रति बहुत कटु हो। मैं यह भी जानती हूं, तुम भोजन और जीवित रहने की अन्य आवश्यकताओं को अधिक महत्व देती हो। इस में सन्देह भी नहीं, जीवन की यह सब आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए धन का होना अनिवार्य है। फिर भी एक नारी का जीवन तब

तक अधूरा रह जाता है जब तक वह एक पुरुष को साथी नहीं बना लेती। जीजी, एक पुरुष नारी का पूरक है। तुम भी विवाह कर लोगी जीजी तो समझोगी। मैं तुम से अनुरोध करती हूँ कि तुम इस बात पर ज़रा गौर करना।

मैं अपनी कहती रही हूँ तुम्हारी एक भी नहीं सुनी। ज़रा लिखो तुम्हारा क्या हाल चाल है? मधुकर भैया से मिलती रहती हो? उनका एक पत्र सुधा को आया था, कि तुम उनसे अभी तक नाराज़ हो कि उन्होंने हमारी शादी में कोई रुपए फेंके थे तुम पर। जीजी, उस बात को भूल नहीं सकतीं? भैया का पत्र मैंने पढ़ा है। पढ़ कर मेरी आँखों में भी आँसू आ गये। उन्होंने लिखा है—“सुधा, माया मुझसे अभी भी नाराज़ है। न जाने किस कुघड़ी में, मुझ से वह गलती हो गई थी, उसके लिए मैं कितना पश्चाताप कर चुका हूँ। देखता हूँ, वह मानेंगी नहीं। आज कल मैं बिल्कुल अकेला हूँ। बस घर से आफ़िस, आफ़िस से घर। तुम लोग कब आ रहे हो? कला को आशीर्वाद।”

जीजी सच, तुम इतनी पत्थर दिल हो, यह मैं न जानती थी।

अरे! जीजी एक बात लिखना भूल गई। जीवन में वैसे उस अनुभव को मैं कभी नहीं भूलूंगी। डल भील में नौका विहार। डल भील एक विस्तृत जल गृह, जिसमें एक साथ कई सौ नौकाएँ चल सकती हैं। सन्ध्या के समय जब पहाड़ियों के पीछे सूर्य लाल हो उठता है, तो उसकी छाया जल के धरातल पर तैरती बड़ी सुन्दर लगती है। चंचल लहरों पर नौका हिलती डुलती है तो हृदय भी उछलने लगता है। ओह! यह केवल अनुभव करने की बात है।

हम इस पन्द्रह तक आने वाले थे। परन्तु सुधा का मन स्केटिंग में इतना लग गया है कि बस कुछ मत पूछो। मैं कभी ‘प्रेक्टिस’ की ओर ध्यान दिलाती हूँ तो यही उत्तर देते हैं—‘अभी क्यों चिंता करती हो कला, एक दिन जमा लूंगा ‘प्रेक्टिस’, अभी कौनसी जल्दी है। मेरे जीवन के सुनहरे दिन तुम कम कर देना चाहती हो?।’

यहाँ हमारी मित्रता एक और जोड़े से हो गई है। उनकी शादी गत वर्ष हुई थी, परन्तु परिस्थितिवश वह काश्मीर न आ सके थे। इस वर्ष आये हैं। लिली बड़ी अच्छी लड़की है। मैंने उसको जीजी तुम्हारी सब बातें बतलाई हैं, वह तुम्हें देखने के लिए बड़ी उत्सुक है।

जीजी तुम्हारे लिये यहाँ से क्या लाऊँ ? काश्मीरी शाल तो लाऊँगी ही, एक हैंडबैग भी लाऊँगी। और भी लिखना जो तुम्हारी पसन्द की चीज़ हो। मधुकर भैया के लिए तो सरासर अन्याय होगा यदि वह यहाँ न आए।

मौसा को प्रणाम कहना। ऐलिस का ब्याह हो गया ? कभी आश्रम की तरफ जाओ ता चम्पा को देखती आना।

बिन्दिया कैसी है ? उसके लिये मैं साड़ी लाऊँगी। उसके लड़के के लिये हाउस बोट।

अरे जीजी, यहाँ केसर बहुत होता है। परन्तु तुम क्या करोगी उस से। अच्छा खुमानियाँ लाऊँगी। मेरे आते समय तक पक जाएंगी।

जीजी, मुझे पत्र जल्दी लिखना।

तुम्हारी स्नेहमयी
कला

बिन्दिया शरबत का गिलास लिये पास खड़ी थी। माया ने पत्र पढ़ा, तो अवसाद से भर उठी। पत्र खुला उसके पास पड़ा था और वह आराम कुर्सी पर लेटी थी।

“शरबत पी लो बीबी रानी। पत्र कला बीबी जी का है ?”

“हाँ बिन्दिया वह तुम्हारे लिये साड़ी ला रही है।”

बिन्दिया मुस्करा उठी, उसके माथे की टिकुली चमक रही थी, आँखों में शरारत का भाव चमक रहा था।

“बीबी रानी, एक बात पूछूँ ?”

“हाँ, पूछो। अरे नहीं, मत पूछो। मैं बता सकती हूँ, तुम क्या जानना चाहती हो। हाँ तुम्हारा अनुमान ठीक है। कला कुछ महीनों

के बाद माँ बन जाएगी ।”

बिन्दिया खिलखिला कर हँस पड़ी, हाथ मटका कर बोली—

“माया बीबी, आप भी अब खुशी का मौका आने दे ना ।”

माया के मन में पहले से ही कुछ हो रहा था, वह अनुभव कर रही थी, आँसू आए कि आए । भरपूर गले से बोली—

“चलो, अपना काम करो ।”

कला इतनी सुखी है, उसका जीवन बचपन से ही सुख में बीता है । पढ़ने के लिये भी उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं उठाना पड़ा । माता पिता दोनों अभी तक जीवित हैं । शिक्षा भी पूरी हो गई । अच्छे से अच्छा स्कूल अथवा कालिज में । सूरत भी भगवान ने ऐसी दी है, जैसे इन्हे बनाने के लिये उसने और कामों से फुर्सत पा ली थी ।

माया का मन भगवान से बदला लेने को उतावला हो उठा । उसका जी चाहा, जोर-जोर से चिल्ला कर कहे भगवान, तू है कहाँ, मैं तुम्हें देखना चाहूंगी, मुझे जो उपहास किया है तुमने, दुनिया में भेजा भी तो न रूप न रुपया ? यदि यह दोनों भी न देने थे तो मुझे भाग्य अच्छा दिया होता । किसी की आँखें दिखाने की चिन्ता है, तो किसी की तयारियों की । वह अप्रैल के महीने में काश्मीर की बहारें लूट रही है और मुझे जून के महीने में यही काम करना पड़ेगा । जून की कड़कती दोपहरी में ... ओह ! माया यह न करे तो ... उसका भाई, उसका क्या होगा ? किसी तरह उसे विलायत भेजना है । माया जब आगे बढ़ी है, तो पीछे नहीं हटेगी । भाई को उसके सहारे की आवश्यकता है । दुनिया में बहुत से ऐसे हैं, जो उसके पैसों पर जीवित हैं ।

माया उठी और साड़ियों की आलमारी खोली । आज वह बहुत बढ़िया साड़ी पहनेगी । आज की रात उसकी परीक्षा की रात है । वह सेठ साहब का ठेका ठहरा देगी ।

कबाड सोचता है, मैं उसके लिए ‘मेस’ जा रही हूँ । उसके साथ खाना खाऊँगी, नाचूंगी और उसके बाद वह मुझे घर छोड़ने आएगा । उसके

लिए यह शाम बड़ी सुहावनी होगी । माया मुस्करा पड़ी । बिन्दिया कमरे में ही एक कोने में खड़ी होकर माया के मुख पर होने वाले भावान्तर देख रही थी । माया को मुस्कराते देख वह बोली—

“बीबी रानी, शरबत ।”

माया ने शरबत का गिलास मुख से लगाया और पी गई ।

माया गत पन्द्रह बीस दिनों से कबाड के साथ अधिक घूमने लगी है। हँसते समय कबाड के मुख पर जो घाव है, वह घृणित लगता है। हँसता है तो उसके जबड़े फैल जाते हैं, परन्तु माया को उसके साथ रह कर एक प्रकार का आत्म संतोष होता है। वह यह अनुभव करती है कि वह कबाड से तो सुन्दर है। उसके 'अहं' की पूर्ति होती है।

माया ने सेठ साहब के लिए फौजी 'मैस' में भोजन बनवाने का ठेका पक्का कर दिया है। एक दफ्तर को 'फर्नीचर' पहुँचाने का ठेका भी पक्का किया है। इस सब के लिए सेठ साहब उससे बहुत प्रसन्न हैं। माया भी अवसर की तलाश में है, कि मौका पाते ही वह अपने भाई के विलायत जाने की बात कहेगी। वह चाहती है सेठ साहब उसके भाई के अविभाविक बनें। परन्तु अभी तक ऐसा अवसर उसके सामने नहीं आया।

मेजर कबाड आने वाला था। माया, सफेद काश्मीरी सिल्क की साड़ी पहने, पंखा छोड़ कर बैठी थी। मई का महीना आधा बीत चुका था। देहली में गरमी पड़ने लगी थी। माया हल्के नीले रंग का 'बायल'

का ब्लाऊज पहने थी, पैरों में चप्पल। माया के घने बालों के गोल जूड़े में ताजे फूलों का गजरा बंधा था।

वह तैयार बैठी थी, किसी समय भी मेजर कबाड आ सकता था।

बिन्दिया आकर माया के पास धड़ाम से बैठ कर रोने लगी।

“क्या बात है बिन्दिया ?” माया ने पूछा।

बिन्दिया और जोर से रोने लगी।

“आखिर बात भी तो पता चले।”

बड़ी कठिनाता से बिन्दिया ने रोते हुए, सिसकियाँ भरते हुए कहा—
“बीबी जी, मेरा आदमी मेहतरानी को साथ ले भाग गया है। मेहतर ने थाने में रिपोर्ट कर दी है। वह मुझे गालियाँ सुना रहा था।”

माया स्तब्ध, बिन्दिया को देखती रही। इसका पति भागा है ? क्यों किस लिए ? वह भी मेहतरानी के साथ ! कौन सी कमी है बिन्दिया में ? बिन्दिया, सुन्दर, चपल और चंचल है। पुरुष ... पुरुष इतना गया बीता होता है ? बेचारी ऐलिस ... वह भी तो मां बनने जा रही है। जॉन ने अभी तक ब्याह नहीं किया। वह न जाने क्या करेगा ? कैलाश कायर निकला। अपनी सुविधा के लिए अलग हट गया। कैलाश का इधर कोई पत्र भी तो नहीं आया।

माया को साहस नहीं हुआ, बिन्दिया को ठाढ़स दे। बिन्दिया के पति नेतासिंह को तो देहली जैसे नगर में रहने के लिए भी मकान न मिलता। बिन्दिया की नौकरी थी, इसीलिए नेतासिंह को भी मकान मिला हुआ था। अपने घर पर ठोकर मार कर, बच्चा छोड़ कर, वह चला गया। बिन्दिया जैसी पत्नी की अवहेलना करके, जिस के मुख पर निश्चेष्ट हँसी खेला करती है, जो कमाती है ...।

बिन्दिया माया के पास बैठी रो रही थी। माया का मन इतना कटु था कि वह उसे सांत्वना भी न दे सकी।

इतने में मेजर कबाड आ गया। इस समय वह सफेद कपड़े पहने था। सफ़ेद कमीज और पैंट।

बिन्दिया को रोते देख वह बोला—“क्या हुआ है इनको, इतने जोर से रो रही है ?”

माया बोली—“पुरुष का अत्याचार है। इसका पति भाग गया है, साथ में मेहतरानी ले गया है।”

मेजर कबाड़ ‘हो-हो’ करके हँस पड़ा। उसका घाव इस समय विशेष रूप से चमकने लगा। माया को अटपटा लग रहा था।

“बहुत अच्छा ! वाह रे रोमियो, सुन्दर पत्नी को छोड़कर, जुलियट को ले भागा ! बड़ा दिलेर आदमी है वह माया।”

“हाँ, अगर तुम इसे साहस कह सको तो !”

“पकड़ा भी जाएगा, यह भी उसे पता होगा। पुलिस उसे छोड़ेगी नहीं।”

परन्तु बिन्दिया, जिसकी सिसकियाँ कुछ थम गई थी, मेजर कबाड़ की ओर देखने लगी। नारी है न, पुरुष पर उसका चिरविश्वास है चाहे लाख बार उसके विश्वास के टुकड़े हो चुके हों।

“मेजर साहब, आप तो बड़े आदमी हैं, मेरे पति का पता लगवा दीजिये।” बिन्दिया ने याचना भरे स्वर में कहा।

माया क्रोधित हो उठी, बोली, “क्या करोगी पति का पता लगवा कर ? अब तुम फिर उसे अपने घर में रखोगी ?”

‘घर मेरा नहीं उसका है’—बिन्दिया धीरे से बोली।

“तुम जाहिल हो”—माया ने उत्तर दिया।

“नहीं माया, वह नारी है और तिस पर भारतीय नारी। उसे अपने घर को सदैव पति का घर ही समझना चाहिये।”

“वह इसकी कमाई खाता है ?”—माया तिनक कर बोली।

“उससे क्या बीबी रानी, हम लोगों में तो नारी काम करती है, चाहे वह घर में काम करे चाहे बाहर। कमाना तो है। बड़े लोगों की बात अलग है।”

“वह तुम्हें छोड़ गया है, एक मेहतरानी के लिये।”

“मेहतरानी ने ही बहकाया होगा। वह तो ऐसा न था।”

माया को लगा वह बिन्दिया को एक तमाचा मारेगी।

“यह क्या, तुम फिर उसके नाम की माला जप रही हो ? पुरुष कायर होते हैं।”

बिन्दिया का मुख लाल हो गया। मेजर कबाड ने स्थिति समझते हुए कहा—“तुम चिन्ता न करो बिन्दिया। यह बताओ कि मेहतरानी की आयु क्या थी ?”

“यही बीस पच्चीस वर्ष की होगी।”

“तो तुम बिल्कुल चिन्ता न करो। तुम्हारे आदमी को कभी कोई पकड़ न सकेगा। मेहतरानी बालिग है, उसे कौन भगा कर ले जा सकता है। दोष केवल तुम्हारे पति का ही नहीं, उसका भी है।”

“क्या सरकार भी ऐसा सोचेगी ?” धीरे से बिन्दिया ने पूछा।

“हाँ हाँ, क्यों नहीं, तुम बिल्कुल चिन्ता मत करो। सब ठीक कर लेंगे। जाओ खाना खाओ। भूल जाओ तुम्हारा पति किसी को लेकर भागा है।”

बिन्दिया को थोड़ा सा आश्वासन हुआ। रो रोकर उसकी आँखें सूज गई थीं।

माया ने भी बिन्दिया की पीठ थपथपाते हुए कहा “तुम चिन्ता मत करो बिन्दिया ! वह जाएगा कहाँ, वापिस आ जाएगा।”

माया और कबाड बाहर आ गए। कबाड ने मोटर का दरवाजा खोला तो माया बोली—“नहीं आज पैदल ही चलो न।”

“इतनी गरमी में पैदल ?”

“हाँ, जी चाहता है।”

“नहीं मैं तो चल न सकूंगा, तुम यदि घूमना चाहती हो तो तुम्हें ओखला ले चलता हूँ, ठंडी जगह है।”

माया ने कोई जवाब नहीं दिया। वह मोटर की आगे वाली सीट पर जाकर बैठ गई। कबाड मोटर चलाने लगा।

“माया, एक बात कहूँ ? बुरा तो न मानोगी ?” मेजर कबाड का हाथ माया के कन्धे पर था ।

“नहीं, बुरा मानने की बात न होगी तो बुरा कैसे मानूँगी ।”

“बुरा मान सकती हो, मैं अपनी शाम खराब नहीं करना चाहता, इसलिए पहले से ही पक्का कर रहा हूँ कि तुम बुरा न मानो ।”

माया भुभुलाकर बोली—“कह डालो न, मन में क्यों रखते हो ।”

“मन में रखना बुरा है ?”

“शटअप ।”

मेजर कबाड खिलखिला दिया । बोला—“क्यों ? आज हुजूर के भी मिज़ाज़ संध्या की इस ठंडी हवा के साथ साथ आकाश तक पहुँच गए हैं ।”

माया ने इसका भी उत्तर नहीं दिया । ऐलिस का ध्यान आ गया, उसके माँ बनने के दिन निकट आ रहे हैं । होस्टल वाले उसे किसी भी दिन निकाल कर बाहर करेंगे । जॉन ने अभी तक उससे ब्याह नहीं किया ।

गरमी की साँभ, ठंडी हवा के कारण, ज़रा सी दिलचस्प लग रही थी, परन्तु बिन्दिया के पति की इस आकस्मिक घटना से वह कबाड और माया के लिए उदास हो चुकी थी । कबाड इन अमूल्य क्षणों को ऐसे ही नहीं खोना चाहता था । धीरे से बोला—

“माया तुम ऐसा जीवन कितने दिनों तक व्यतीत करोगी ?”

“कैसा जीवन ?”

“जैसा अब व्यतीत कर रही हो । कभी यहाँ चाय, वहाँ पार्टी और फिर नाच ।”

माया हँस पड़ी । एकाएक उसके दिमाग पर छाये बादल जैसे फट गये ।

“तुम यह मुझसे पूछ रहे हो ? चोर भी और कोतवाल भी ?”

“मैं तो तुम्हारे लिए कह रहा था । मेरे जीवन का क्या है, जैसा है शायद ठीक है, शायद नहीं ।”

“सच कहना कबाड, तुम्हे अपने परिवार वालों की याद कभी नहीं आती ?”

“मेरे परिवार मे है कौन ?”

“मैंने सुना है, तुम्हारी पत्नी है ।”

कबाड का मुख और भी काला हो उठा । दूसरों का उपहास करते समय उसका घाव चमक उठता था, परन्तु इस समय वह घाव भी नहीं चमक रहा था । धीरे से बोला—“तुममे किसने कहा है माया कि मेरी पत्नी है ।”

“शायद उस दिन तुम्हारे ‘मेस’ की पार्टी मे किसी ने कहा था । किसी अफसर ने ही ।”

“हाँ यह सच है । मेरी पत्नी बहुत फूहड़ है, बिल्कुल देहात की । उसे पता ही नहीं सभ्यता किस चीज का नाम है ।”

“सुन्दर तो होगी ?”

“सुन्दर से तुम्हारा न जाने क्या मतलब है ? गोरी तो वह है, जैसी सब महाराष्ट्रीय लडकियाँ होती हैं ।”

“तुम्हे प्रेम भी करती होगी ?”

“वह क्या जाने, प्रेम किस चिडिया का नाम है । वह तो केवल भक्ति करना जानती है, जब हुआ तब पाँव छू दिये । वह भी अब बन्द कर दिये है ।”

“तुम उसके साथ कभी भी नहीं रहे ?”

“नहीं, केवल विवाह के दो दिन रहा था ।”

“तो फिर विवाह क्यों किया था ?” माया के स्वर मे कर्कशता थी ।

“मैं कालेज मे पढता था । मेरे पिता गाँव के वैद्य थे । मेरे ससुर गाँव के सबसे अमीर आदमी थे । गाँव का कोई और लड़का शहर मे कालेज मे नहीं पढता था । मेरे ससुर ने मेरे पिताजी को बाध्य कर दिया था कि वह मेरा विवाह उनकी पुत्री से कर दें ।”

“ओह, तो तुम्हारे पिता लालच मे आ गए ?”

“नही माया, केवल पिता को दोष नहीं दे सकता। मेरी बड़ी आकांक्षा थी कि मैं विलायत जाकर पढ़ूँ। वह इच्छा केवल एक ही तरह से पूरी हो सकती थी, बहुत से रुपये से। तुम जानती हो, रुपया मुझे जैसे व्यक्ति को कहां से मिल सकता था। केवल ब्याह से। पिता वैद्य थे, एक वैद्य के पास कितना रुपया होता है, तुम स्वयं समझ सकती हो।”

माया मौन रही। मोड़ पर भीड़ अधिक थी, मोटर चलाना आसान न था। सड़क पार हो जाने पर माया बोली—“कबाड, तुम्हारी आकांक्षा तो पूरी हो गई, परन्तु एक नारी का जीवन तो नष्ट हो गया।”

“मेरी आकांक्षा भी कहां पूरी हुई। मैं विलायत नहीं गया, नहीं जा सका। मुझे ज्योत्स्ना ने शादी होते ही कहा कि मैंने उससे ब्याह केवल रुपये के लिए किया है। मुझे उस समय बड़ा क्रोध आया, अपने पर, पिता पर, समाज पर, सब पर। मेरा जी चाहा बम्बई के विशाल समुद्र में कूद पड़ूँ, जीवन का अन्त कर दूँ।”

“क्या सत्य इतना कटु होता है?” माया ने कबाड की ओर प्रथम बार सहानुभूति से देखते हुए कहा।

“हाँ, सत्य इतना ही कटु होता है। शायद तुम्हें अभी इसका अनुभव नहीं।”

ओखला आ गया था, माया मोटर से उतर गई। कबाड भी।

“यह फूल तुम्हारे जूड़े में लगे बहुत सुन्दर लग रहे हैं माया। इनकी सुगन्ध किसी को भी पागल बना सकती है।”

माया को न जाने आज कबाड से यह बात सुन कर हँसी नहीं आई, न ही उसने कबाड की इस बात का व्यंगपूर्ण उत्तर दिया।

ओखला की नहर यमुना के पानी को फाड़ कर बनाई गई है। यहाँ घास के मैदान तथा अन्य बहुत से स्थान हैं, नर नारियों के बैठने के लिए।

कबाड और माया भी पानी के निकट बैठ गए।

“तुम तो घूमना चाहती थी”—कबाड ने पूछा।

“नहीं, अब बैठ कर तुम से बातें सुनूंगी।”

“कौन सा तुम्हारा मन पसन्द विषय है?”

“तुम्हारी पत्नी के विषय मे और भी कुछ जानना चाहूंगी।

“उसमें एकाएक इतनी दिलचस्पी कैसे?”

“तुम में जो है।”

“मुझ में, माया?”

“हाँ।”

“इस दिलचस्पी को भूल तो न जाओगी?”

“नहीं, अच्छा बताओ ज्योत्स्ना आजकल कहाँ है?”

“बम्बई मे।”

“क्या करती है?”

“पढ़ती है।”

“किस क्लास में?”

“बी०ए० फ़ाइनल मे।”

“फिर तुम उसको अपनाओगे?”

“नहीं। अपनाते का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अब तो वह पढ़ लिख चुकी है। यह तो दो हृदयों का मेल है, यदि नहीं हो पाता तो नहीं हो पाता।”

“भारतीय नारी ऐसी नहीं हैं कबाड।”

“तुम सब की ओर से वकालत कैसे कर सकती हो?”

“मैंने भी बहुत सी देखी हैं।”

“मैं भी देखता हूँ।”

“ज्योत्स्ना से इस विषय मे कभी बात हुई? वह क्या कहती है?”

“वह क्या कहेगी। जो उसकी स्थिति मे एक नारी कह सकती है। यही कि मैंने उसका जीवन बिगाड़ दिया है, उसे कही का नहीं रखा।”

“सच मानो कबाड, वह कहती तो सच है। क्योंकि उसका जीवन तो व्यर्थ गया, बेचारी को कभी भी पुरुष का प्यार न मिला।”

“मैंने किसी पुरुष को उससे प्यार करने के लिये मना नहीं किया।”

“यह कैसी बहकी बहकी बातें कर रहे हो। कोई कवि कहता, तों मैं सुन भी लेती। इस समय तुम माया से बात कर रहे हो, जो केवल यथार्थ में रहती है। वह भावुकता में विश्वास नहीं रखती।”

मेजर कबाड का मुख खिल उठा। आँखें माया को और भी ध्यान से देखने लगी।

“तुम मुझ से कह रही हो माया, मन्मथनाथ कबाड से। मधुकर को देखकर किसकी आँखें गीली हो जाती हैं? किसका हृदय धडकने लगता है?”

माया लजा गई, मौन रही।

“अब बोलो माया।”

“ओह, श्रीमती मेहता के सामने आपको क्या हो जाता है?”

“यह बदला लेने का कोई ढंग नहीं। मिसेज मेहता एक भद्र महिला हैं। और मैं उनका आदर करता हूँ। उनको वही सब देता हूँ जो एक महिला को समाज में एक पुरुष से मिलना चाहिये।”

“कबाड, तुम अन्तर-दृष्टि रखते हो। मुझमें वह शक्ति है कि मैं अपना दुःख अपने तक रख सकूँ, किसी से न कहूँ।” माया का स्वर भीगा भीगा था।

“अभी तक तुम ऐसा ही करती गई हो?”

“हाँ, मैं किसी से नहीं कह सकी, कभी नहीं। यहाँ तक कि मैं अपनी आत्मा से भी अपनी हरकतों की पुष्टि नहीं करवा सकी।”

कबाड ने अनायास माया का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

“माया, मुझे प्रसन्नता हुई, तुम अपने प्रति इतनी ईमानदार हो। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसे क्षण होते हैं, जब वह व्यक्ति अपने प्रति ईमानदार हो उठता है। सच बताओ माया, तुम मधुकर से प्रेम करती हो?”

माया ज़रा झिझकी।

“जानते हो कबाड, एक नारी के लिए यह परिस्थिति कितनी अटपटी है जब एक पुरुष उससे पूछे कि तुम्हे दूसरा पुरुष अच्छा लगता है।”

मेजर कबाड ने माया का हाथ धीरे से दबा दिया।

“माया, विश्वास रखो, मैं तुम्हारा मित्र हूँ, मित्र रहूँगा। मेरी भावनाओं में कभी अन्तर न आएगा। मेरा इतना बड़ा जीवन बिना मित्र के ही व्यतीत हुआ।”

“मुझे तुम्हारे पर विश्वास होता जा रहा है, परन्तु कबाड एक दिन मे इतनी बातें क्यों पूछना चाहते हो?”

“तुम्हे मैं यदि किसी तरह असमंजस में डाल रहा हूँ तो मत बतलाओ माया।”

“मैं नारी हूँ कबाड, सबल भी हूँ निर्बल भी हूँ। बचपन से अपना दुःख अपने तक रख कर घुटती रही हूँ ... ओह ! मैंने क्या क्या नहीं सहा कबाड, परन्तु सदैव अपनी ज़बान पर ताला रखा है।”

दोनों कुछ क्षण तक मौन रहे। फिर एकाएक कबाड बोला—
“मैं दो महीने की छुट्टी ले रहा हूँ। तुम भी चलो, किसी पहाड़ पर घुमा लाऊँ।”

“कैसे चल सकूंगी?”

“तुम चाहती हो मैं विश्वास कर लूँ कि तुम मेरे साथ चलने में इसलिये इन्कार करती हो कि मैं पुरुष हूँ?”

इस बार माया खिलखिला दी।

“पुरुष ही तो हो, भेड़िया नहीं, भेड़िये से केवल एक सीढ़ी नीचे।”

“तुम बड़ी साहसी हो, जो भेड़ियों से डरती भी नहीं। कभी एक भेड़िये के साथ और कभी दूसरे के साथ।”

माया को बुरा नहीं लगा।

“क्योंकि कबाड मुझे जीवन में अभी अपने और अपने घरवालों के लिए बहुत से काम करने हैं। उन सब कामों में केवल भेड़िये ही मेरे काम आ सकते हैं।”

मेजर कबाड ने उठते हुये कहा, “वह देखो तुम्हारा मधुकर चला आ रहा है।”

“आने दो डरते क्यों हो ? उसमें इतनी शक्ति नहीं कि तुम से द्वन्द्व युद्ध कर सके, वह केवल कविता ही लिख सकता है।”

“यह तुम उसकी कमजोरियां भी जानती हो ?”

“हाँ खूब जानती हूँ। कही एक महल में मधुकर को रहना चाहिये, जहाँ न सर्दी हो न गर्मी हो। खाने पहिनने के लिये सब बिना प्रयत्न किये ही सुलभ हो जाए और जिस के चारों ओर पुलिस का पहरा हो, ताकि इन्हें वहाँ से कोई उठा कर न ले जाए।”

“यह सब तुम कह रही हो ?”

“हाँ कबाड, और भी सुनो। वहाँ शराब पीने को मिल जाए और कविता लिखने को।”

“यह इतनी कटु क्यों हो ? वह तो तुम्हारे से खूब प्रभावित है।”

“वह केवल जरा सा आकर्षण है, जो एक झटके में समाप्त हो सकता है।”

दोनों चुप हो गये। मधुकर पास आ गया था। वह जिन लोगों के साथ था, उनसे विदा लेकर आया था।

मेजर कबाड ने हँसते हुए कहा—“बहुत खूब, लाजवाब संयोग है, आप इधर कैसे टपक पड़े ?”

मधुकर को मेजर कबाड जरा भी पसन्द न था। वह सदैव यही अनुभव करता कि यह एक फौजी गुण्डा है जिसे मनुष्यता तो छू नहीं गई, केवल सुरा और सुन्दरी की आराधना करता है।

उसने कबाड की बात का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं समझी।

“माया, तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिला इतने दिनों से।”

“आपने जानने की कोशिश भी कब की है ?”

“मैं तुम्हारे घर कई बार गया हूँ। बिन्दिया सदा कह देती है, तुम बाहर गई हो, घर पर कभी मिली ही नहीं।”

“हाँ, इधर मैं व्यस्त रही हूँ। कुछ निजी काम भी अधिक थे।”

मधु का मुह छोटा सा निकल आया, धीरे से बोला—

“चलिये आज रात का खाना आप लोग मेरे साथ खाइये।”

“मुझे तो कोई ऐतराज नहीं। माया से पूछ लीजिये।”

“माया, न मत करो, चलो।”

“आपके घर पर इतना खाना निकल आएगा?”

“क्यों न निकल आएगा?”

माया कुछ अनमनी सी हो उठी।

“मुझे घर चलना चाहिए। बिन्दया अपने पति की ओर से बड़ी दुःखी है उसका हाल चाल देखू।”

“तो चलो हम दोनों भी तुम्हारे साथ चलते हैं।”

“चलिये, खाना बाजार से ले लिया जाएगा। मुझे प्रसन्नता होगी आप लोगों के चलने पर।”

कबाड और मधुकर उस रात को बारह बजे तक माया के यहाँ बैठे रहे। बिन्दया से बात करते रहे, उसे ढाढस देते रहे। कबाड ने उस दिन अनुभव से देखा कि मधुकर तो बिल्कुल मिंटी के खिलौने का सा है, ज़रा से धक्के से टूट सकता है। मधुकर को देखकर कबाड को यह भी लगा कि वह तो स्वप्नों की दुनिया में रहता है, जहाँ जब कुछ सुन्दर है, और नियम से चलता है।

: २ .

देहली की गरमी इतनी अधिक बढ़ गई थी कि लोग देहली छोड़ छोड़ कर पहाड़ पर जा रहे थे। सुधाकर और कला पहाड़ से लौट आए थे। कला ने जैसा माया को लिखा था वह सब के लिए कुछ न कुछ लाई थी। बिन्दिया के लिए रेशम की साड़ी, तो माया के लिए नरम कीमती ऊनी शाल जिसमें महीन कशीदा हाथ से निकाला हुआ था। कला और सुधाकर उसी फ्लैट में रहने लगे, जहाँ मधुकर रहता था। कला के घर में आ जाने से घर का रूप बदल गया, जहाँ सिगरेट के अध-जने दुकड़े बिखरे रहते थे, अखबार जहाँ-तहाँ पड़े रहते थे, अब सब साफ हो गया। घर की प्रत्येक वस्तु चमकने लगी। मधुकर यदि अखबार खुला भी छोड़ जाता, तो कला उसकी तय लगा देती। तस्वीरों पर अब धूल जमी न रहती, बिस्तर की चद्दरें साफ और धुली हुई होती, परदे भी नये और साफ।

कला की तबीयत अच्छी नहीं रहती थी। खाना खाती तो मतली हो जाती, पानी पीती तो वह भी भीतर नहीं ठहरता बाहर आ जाता।

माया कला से मिलने मधुकर की अनुपस्थिति में ही आती। वह मधुकर के सामने आने का प्रयत्न न करती। कला ने कई बार कहा भी, “जीजी, तुम भैया के रहते क्यों नहीं आती ? वह भी तो चाहते हैं उनके रहते तुम आओ। मुझ से बार बार पूछते हैं, कला, तुम्हारी जीजी नहीं आती, क्या वह मुझ से इतनी नाराज है कि यहाँ आएंगी ही नहीं ?”

माया हँस कर कला को टाल देती। सन्ध्या को प्रायः सुधाकर कला के साथ होता। कभी कभी मधुकर भी उन लोगों के साथ बाहर जाता, परन्तु अधिकतर वह दोनों ही होते।

ऐलिस में भी कला मिलती रहती। इधर चार पाँच दिनों से ऐलिस अस्पताल में है। अस्पताल में स्थान मिलना बड़ा कठिन था, किसी कमरे में जगह न थी। विशेषरूप से ईसाइयों के लिए बने हुए अस्पताल में भी जगह

मिलना इतना कठिन था, कि माया को काफी मेहनत करनी पड़ी। अस्पताल वालों को ऐलिस के साथ सहानुभूति थी, परन्तु किसी भी कमरे में चारपाई खाली न होने पर वह क्या कर सकते थे। किसी भी तरह ऐलिस के लिए चारपाई की आवश्यकता थी। किसी कमरे में चारपाई न थी। एक महिला, जिन्हे अस्पताल छोड़ने में कुछ ही दिन रह गये थे, ऐलिस को अपनी चारपाई देने पर राजी हो गई। माया को उनकी मिन्नत करनी पड़ी।

ऐलिस को अस्पताल में दाखिल करवा के माया ने एक सुख की साँस ली। इधर माया की माँ ने उसकी छोटी बहन छाया के लिए लडका तय किया है जो ओवरसियर है। अम्बाला में ही उसकी नौकरी लगी हुई है। माँ ने पत्र में यह भी लिखा है कि लडका देखने में बड़ा सुन्दर और सम्य है। छाया को पसन्द कर चुका है। माँ चाहती है छाया का ब्याह जल्द से जल्द कर दिया जाए। माया को उन्होंने लिखा है कि वह ब्याह की तैयारी करनी शुरू कर दे। नवरात्रि आनेवाली हैं, अभी में वह ब्याह करना चाहती हैं। माया को उसकी भी चिन्ता है। कहाँ कहाँ से क्या क्या जुटाये ? कभी कभी वह ऊब जाती तो उसका जी चाहता ... काश ! उसके पास कुछ ऐसे साधन होते कि वह कभी उचित अनुचित की लेशमात्र परवाह न करती। अभी तक उसके मन में संस्कार दबे न थे, मरे न थे, वह कभी भी समय पाकर उभर आते थे। उस समय माया आत्मग्लानि से तिलमिला उठती थी।

उधर सेठ धनपति ने देहरादून में एक सिनेमा खोलना चाहा था। वह मशीन के कल पुर्जे लेने तीन सप्ताह के लिए विदेश गए थे। जाते समय उनका आग्रह था माया साथ चले। माया ने परिवार के जिम्मेदार सदस्य की भांति यह सुझाव दिया कि अगर वह भी साथ गई तो विज्ञापन फ़र्म को कौन देखेगा। दिवाली से पहले बहुत से दुकानदार अपना हिसाब कर लेते हैं, आने वाले वर्ष के लिए भी विज्ञापन सुरक्षित करवा लेते हैं। धन के लालच के सामने उन्हें माया का मोह त्यागना पड़ा। धनपति

ने भी सोचा माया फर्म को बिल्कुल अपना समझती है, तो क्यों न इसका कथन मान लिया जाय। फिर विदेश में घूमने फिरने के लिए छोकशियों की कमी न होगी। बहुत सी मिल जाएंगी। माया के त्याग ने सेठ धनपति के मन में इस भाव को गहरा अंकित कर दिया कि माया उनके लिए बड़े में बड़ा त्याग करने को तत्पर रहती है। जाते समय भी वह माया से वादा ले गए थे कि वह उनके साथ पहाड़ पर जाएंगी। सेठ धनपति मन ही मन बहुत प्रसन्न थे। कई बार सोच चुके थे कि माया उनकी कितनी कृतज्ञ है, आज तक जितने भी लोग उन्होंने देखे हैं, वह प्रायः कृतघ्न होते हैं। जहाँ काम बना वह मुख मोड़ कर चले जाते हैं।

मेजर कबाड़ दस दिन के लिए बाहर गया हुआ था। आज ही लौटा है। इधर पिछले कुछ दिनों से उसकी माया से एक प्रकार की घनिष्टता स्थापित हो गई है। कला बहुत बार कहती भी है—

“जीजी ! यह आग और पानी का कैसा मेल है ?”

माया सदैव उत्तर देती है—“मैत्री की नींव सहानुभूति है कला, तुम सोच नहीं सकती कि एक पुरुष और एक नारी की मैत्री हो सकती है ? क्यों ?”

“नहीं जीजी, मैं तो नहीं सोच सकती। तुम कह रही हो तो मान लेती हूँ।”

“जबरदस्ती मानने के लिए मैं तुमसे नहीं कहती, कला। एक नारी जिसे भाग्य ने चारों ओर से सुरक्षित रखा है वह एक ऐसी परिस्थिति की कल्पना भी नहीं कर सकती जिस में, नारी को पुरुष की मैत्री के लिए हाथ बढ़ाना पड़े।”

“जीजी, जो अरक्षित हैं, असहाय हैं, क्या वह सभी पुरुष की मैत्री चाहती हैं ?”

माया के साँवले मुख पर एक गम्भीरता पुनः आई। उसका जी चाहा कि कला को खरी खरी सुना दे ‘तुमने कभी अभाव नहीं देखा कला। तुमने कभी यह नहीं जाना कि जीवन में कोई ऐसी वस्तु भी है जो

तुम्हारी पहुँच से बाहर हो, जिसे तुम अपना नहीं बना सकती। तुम्हारे लिए संसार की सभी वस्तुएँ सुलभ हैं। संसार तुम्हारे लिए उस बाजार की तरह है जहाँ तुमने जो कुछ देखा, उसको लेने के लिए मन एक बार ललचा, और वह वस्तु तुम्हारी हो गई।'

"यह आवश्यक नहीं कला कि सभी स्त्रियाँ पुरुष की मैत्री चाहती हैं। आज हमारे समाज की व्यवस्था बदल गई है। पहले एक पुरुष परिवार भर की नारियों का भार अपने ऊपर ले लेता था। आज अपना पति भी भार लेने को तैयार नहीं। भाई हो, तो वह भी मुँह चुराता है। आज की व्यवस्था में जब नारी को स्वयं सब कुछ करना है तो पुरुष से मैत्री तुम्हें अस्वाभाविक क्यों लगती है? जिस नारी को भाई या पति प्राप्त है, वही ऐसी मैत्री से दूर रहेगी।"

कला के मुख पर इस समय भी अविश्वास की छाप थी। माया को आभास हो गया कि उसे जिस दृष्टि से देखा जा रहा है, वह कोई प्रसन्न करने वाली दृष्टि नहीं। परन्तु माया ने इतना सहा है, इतना सहती आ रही है कि छोटी मोटी बात तो अब उसे विचलित नहीं करती। यदि कला की दृष्टि में अविश्वास है तो भी क्या? माया कला के विश्वास को पाकर कौन खजाना पा लेगी। बहुत से लोग माया को गालियाँ देते हैं, उनमें दो की भर्ती और सही। माया ने कला के साथ बात करनी ही बंद कर दी। वह और नहीं बोलेगी। कला अपनी सुरक्षित जिन्दगी में कैसे समझ सकती है कि अगर कही अभाव है तो उसकी क्या पूर्ति है।

कला ने जब यह सुना था कि बिन्दिया का पति मेहतरानी को साथ ले भाग गया है, तो उसकी आँखों में सहानुभूति के आँसू आ गये थे। वह केवल इतना बोली थी, "बेचारी बिन्दिया।"

"बेचारी बिन्दिया।" माया यह सुन कर तेज़ हो उठी थी। उसे बहुत बुरा लगा था कि कला स्वयं कुछ कर नहीं सकती, सहायता नहीं दे सकती तो रोने क्यों लगी है। माया को उन कर्तव्यविमूढ़ लोगों से

कोई लगाव नहीं जो 'बेचारा' आदि कह कर लोगो को पशु और अपाहिज बना देते हैं। स्वयं भी कर्मशील नहीं होते और दूसरों का भी गला घोटते हैं। माया क्षमा को छलना समझती है।

माया को आज सेठ धनपति का पत्र मिला था जो उन्होंने विलायत से भेजा था। कुछ दफ्तर के विषय में सूचना पूछी थी। माया सोच रही थी उसका अपना अस्तित्व कुछ नहीं, यह सब रुपये पैसे के लिए लिखा हुआ पत्र है। माया का अपना श्रेय किंचित मात्र नहीं। सेठ साहब का पत्र जैसे केवल व्यापारी पत्र भर था। माया के मुख पर वेदना की एक गहरी छाप थी। वह दफ्तर से लौट कर पंखा खोल अलसाई सी लेटी थी। बिन्दिया आज व्यस्त थी क्योंकि इधर 'मेस' के चौकीदार के पास रहती है और उसी चौकीदार की तबीयत खराब है। माया के मन में यह भी आया, वह क्यों चिन्ता करे।

कबाड आ गया।

“क्यों माया, आज लेटी क्यों हो?”

“थक गई थी, आओ बैठो।” माया ने ज़रा सा उठते हुए कहा। कबाड उसी पलंग पर बैठ गया।

“यही बैठ गया हूँ, बुरा तो न मानोगी?”

“नहीं, यहाँ इसी खाट पर बैठने में भलाई बुराई का प्रश्न क्या उठता है।”

“खाट पर बिना पूछे बैठ जाना, प्रश्न तो अभी उठता है, फिर कब उठता है?”

“क्यों तंग करते हो कबाड? अगर तुम यह सोचा कि वह छुई मुई की लज्जावाली भावनाये मुझमें भी हैं, तो तुम गलती कर रहे हो।”

“क्यों?”

“लगातार नौकरी करने से नारी-जीवन की आत्मसत्ता जाती रहती है। नारी-हृदय की कोमल वृत्तियों का विनाश हो जाता है। दिन रात अफसरों की खुशामद और आफिस के सहकर्मियों की त्रुटियाँ पकड़ने की

धुन में रहते रहते मन का कोमल भावनाये विदग्ध हो जाती हैं। यहाँ तक कि आफिस के क्षुद्र घेरे से दूर पहुँचने वाली दृष्टि भी बिल्कुल क्षीण पड़ जाती है।”

“आज बड़ी ‘फिलासफी’ की बातें कर रही हो।”

“हाँ, यदि इसे तुम ‘फिलासफी’ समझ लो।”

“बहुत ऊब चुकी हो इस जीवन से?”

“यह जान कर मैं अपने को अधिक हतोत्साहित नहीं करना चाहती। मुझे अभी बहुत से काम करने हैं।”

“ओह! शायद सेठ धनपति की विज्ञापन फ़र्म फेल हो जाएगी जब तक आप काम न करती रहेंगी।”

“फ़र्म के लिए तो बहुत से लोग खरीदे जा सकते हैं, परन्तु मेरे भाई बहन को कौन देखेगा?”

“तुम उनकी बात कर रही थी। कभी अपनी बात तो करती नहीं। माया, मैं जब होता हूँ तुमसे इधर उधर की बात सुनता हूँ, कभी यह नहीं कि तुम अपनी भी कहो।”

“अपनी क्या कहूँगी। अपना तो अभी कुछ कहने लायक है नहीं।”

“क्यों? तुम्हारे जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं? अपनी तुम्हारी कोई आकांक्षा नहीं?”

“है क्यों नहीं कबाड - तुम नहीं समझ सकोगे।”

कबाड ‘ही ही’ करके हँस पड़ा। वह इतनी जोर से खिलखिलाया कि माया जो तकिये का सहारा लेकर बैठी थी, उठ बैठी।

“अरे! तुम मुझे समझाने जा रही हो? बहुत खूब! क्या विशेष है जो तुम मुझे समझाओगी?”

माया के मुख पर कोई भावान्तर नहीं हुआ। जैसे कबाड का यह सब कहना न कहना उसके लिए कोई महत्व नहीं रखता।

कबाड ने देखा माया इस प्रकार का मुह बना रही है मानो उसे वह सब पसन्द नहीं जो कुछ भी कबाड कह रहा है। तो उसने विषय

बदलना ही अच्छा समझा। कबाड उन व्यक्तियों में से है जो स्थिति तथा वातावरण को गम्भीर नहीं होने देते। ऐसे लोग जीवन का वास्तविक सौन्दर्य इसी में समझते हैं कि जो क्षण सुख में तथा हँसी खुशी से व्यतीत हो जाए वही अच्छा है। कबाड के अपने जीवन में घोर दुःख था। वह कहीं बाजार में, सिनेमा में, जहाँ भी किसी जोड़े को इकट्ठा देखता तो उसके हृदय में एक हूक सी उठती। उसी समय उसका मन कहता कि दाम्पत्य सुख उसके जीवन में शायद कभी नहीं है। कबाड अपने को दोष न देता, भाग्य को भी नहीं, परिस्थितियों को भी नहीं। सच तो यह है कि वह गम्भीरता से इस विषय में कभी सोचता ही नहीं। उसे यह अनुभव होता कि वह जितना इस ओर सोचेगा उतनी उसकी उलझन बढ़ती जाएगी और सिवाय इसके कि उसे दुःख हो, उसके हाथ कुछ नहीं आएगा। जहाँ भी दुःख भरी कोई चर्चा आरम्भ होती वही कबाड उसे समाप्त कर देता। वह जानता है कि माया की सबसे बड़ी कमजोरी शायद उसके परिवार वालों की निर्धनता तथा असमर्थता है। वह जब तब होता उस विषय की बातचीत बन्द कर देता, विषय बदल देता। उसे इस बात की सम्भावना लगती कि यदि माया का 'मूड' बिगड़ जाएगा तो सारी शाम ही खराब हो जाएगी। और शाम खराब करने से तो अच्छा है उस नाजुक विषय को छेड़ा ही न जाय, जहाँ शुरू हो वही का वही बन्द कर दिया जाए।

माया और कबाड कुछ क्षणों के लिए खामोश बैठे थे कि कला आ गई।

“अरे !! आओ कला आओ, तुम्हारी ही आवश्यकता थी। यहाँ सब चुप हैं।” मेजर कबाड ने कला के लिए वही खाट पर स्थान छोड़ते हुए कहा। स्वयं वह उठ गया और कुर्सी पर बैठ गया। पीछे मधुकर भी था।

माया का मुख मधुकर को देखते ही लाल हो उठा। रोष में नहीं....
वैसे ही।

मधुकर ने कबाड से हाथ मिलाया, माया की ओर बड़ी याचना भरी
दृष्टि से देखा।

“क्यों तबीयत कुछ खराब है?”

“नहीं।”

“तबीयत तो खराब नहीं कुछ उदास सी रहती है, उखड़ी उखड़ी”,
कबाड ने कहा।

मधुकर माया की ओर देखता हुआ बोला—“क्यों? शहर भर की
पार्टियाँ सब समाप्त हो गई हैं? आजकल कोई पार्टी नहीं होती?”

कला हंस पड़ी। माया ने इस व्यंग्य का उत्तर भी नहीं दिया। मधुकर
को जरा सा अखरा। मैं कोई भी बात करूँ, यह उत्तर न देगी। मानो
मेरा बात करना न करना इसके लिए कोई महत्व नहीं रखता।

“आप लोग कुछ शरबत पीजिएगा, या ठंडी कॉफी।”

कबाड उठता हुआ बोला—“मैं तो जा रहा हूँ। आज हमारे ‘मैस’
में उपस्थिति जरूरी है। मैं आज इतने दिन के बाद लौटा हूँ।”

माया बोली—“एकाएक कैसे ख्याल आ गया? कुछ देर पहले तक
तो याद भी न था।”

“आज महीने का पहला सोमवार है। सामने लगा क्लैंडर न देख
लो।”

कबाड चला गया।

माया बोली—“मैं बिन्दिया को बुला लाऊँ, आप लोगों के लिए
अलपान का प्रबन्ध करेगी।”

कला ने उसे रोकते हुए उत्तर दिया—“नहीं जीजी, तुम बैठो न।
मैं जाती हूँ। बहुत दिनों से उधर के लोगो में मिली भी नहीं, अब यह
अवसर मिला है, तो मुझे जाने दो।”

“अच्छा बुला लाओ, यदि वह अपने क्वार्टर में न मिलेगी, तो ‘मेट’ के घर में मिल जाएगी।”

मधुकर ने सिगरेट जला ली। कुर्सी से उठकर खिड़की की ओर मुंह करता हुआ बोला—“मैं इतना बुरा हो गया हूँ कि तुम मेरे पास भी नहीं बैठना चाहती।”

“यह परिवर्तन मैं कैसे जान सकती हूँ? इसकी मुझे कोई सूचना नहीं मिली अब तक।”

“तुम जानना भी तो नहीं चाहती।”

“आपने वह अधिकार दिया ही कहाँ?”

“अधिकार दिया तो नहीं जाता माया, वह तो जबरदस्ती ले लिया जाता है। तुम अपने और मेरे बीच इतना दुराव क्यों रखती हो?”

माया मौन रही।

“तुम मुझे क्षमा नहीं कर सकती?”

“आप क्षमा क्यों मांग रहे हैं? रुपये के पीछे पागल होने वाली माया आपको नगर भर में बहुत मिल जाएंगी।”

“प्रत्येक मनुष्य की अपनी निजी सत्ता भी तो होती है। और फिर तुम मुझे ऐसा क्यों समझती हो कि मैं जब तब किसी के पीछे भागता रहता हूँ? अपने साथ फौरन दूसरों की तुलना कर लेती हो। आज चार महीने से तुम मुझसे नाराज हो माया। तुम समझ नहीं सकती माया, इन चार महीनों में मेरी कविता की प्रेरणा समाप्त हो गई है। जैसे सूख गई है।”

माया खिलखिला दी।

“क्या मैं यह जान सकती हूँ कि यह वह अहंवादी पुरुष बोल रहा है जिसने मेरे मुख पर नोट फेंके थे कि कवि बोल रहा है जिसने?”

“बस करो माया, मेरी क्षुद्रता का परिचय और न दो। मैं हीन हूँ, मैं स्वयं जानता हूँ। तुम ठोक पीट कर बार बार यह न बतलाओ।”

मधुकर की आँखों में आँसू आ गए। शायद उसका सारा 'अहं' आँसू बन कर बहने लगा।

माया का हृदय द्रवित हो उठा। यह वही ऐसा व्यक्ति है जो उस के लिए आँसू बहा रहा है और आँसू हृदय की छिछोरी भावना से नहीं निकल आते। उनमें सदैव तथ्य होता है, हृदय की गहनतम गहराइयों से उन्हे प्रेरणा मिलती है। कबाड केवल मन बहलाव के लिए माया के पास आता है। धनपति को, अपना स्वार्थ है। माया का निजी मूल्य जानने वाला दोनों में कोई नहीं। केवल मधुकर। कैलाश कायर निकला, उसके जीवन से खिलवाड़ करके चला गया।

एक क्षण में माया ने मन ही मन सारा विचार विनिमय कर लिया। वह उठी और उसने अपनी साड़ी की छोर से मधुकर के आँसू पोंछ दिए।

“छी: ! तुम भी छोटे बच्चों की तरह रोते हो।”

मधुकर ने माया के हाथ पकड़ लिए। आँसू माया के हाथों पर गिरने लगे। माया का शरीर झनझना उठा।

“माया, तुम मुझ पर विश्वास नहीं करतीं ?”

माया ने मधुकर की आँखों में देखते हुए कहा, “तुमने मुझे विश्वास करने का मौका ही कब दिया, जब तब होता है, तुम मुझे फटकार देते हो।”

“मेरी फटकार में ही मेरा प्यार है माया।”

“ओह ! यह आप कह रहे हैं ? यह आकाश पर चलते चलते धरती पर कैसे उतर आए ?”

“मैं तो धरती पर रहता हूँ, यदि तुम कभी देखने की कोशिश करो।”

“खैर, छोड़ो इस बात को। बतलाओ तुम्हारा हृदय तो मेरे लिए शुद्ध है न।”

“हाँ यदि हृदय शुद्ध हो सकता है तो शुद्ध है। अब तो ऐसा व्यवहार न करोगी ? मैं कितनी रात सोया नहीं हूँ। ओह ! माया, तुम कल्पना नहीं कर सकती।”

“ऐसी बात तो प्रत्येक प्रेमी ने अपनी प्रेमिका से कही होगी।”

“माया और मधु, दुनिया वालों की तरह नहीं हैं।” मधुकर ने माया का हाथ दबाते हुए कहा।

“रोमियो ने जूलियट से भी ऐसा कहा होगा।”

“माया, यह तुम पत्थर की कैसे बन गई हो?”

“मैं पत्थर की नहीं बनी, मधु। मैं भी हाड-मांस की बनी हूँ। मेरा भी दिल धड़कता है। परन्तु मेरी भावनाओं का, आकांक्षाओं का, कोई मूल्य नहीं। वैसे ही जैसे पथ पर बैठने वाली भिखारिन महल में रहने के स्वप्न देखे, तो मिट्टी में मिल जाए।”

“तुम इतनी निराश क्यों हो माया? मुझे एक बार अवसर दो, मैं इस निराशा को दूर करने का प्रयत्न करूँगा।”

माया को विश्वास नहीं हुआ इस बात पर। मधुकर पुरुष है परन्तु ऐसा पुरुष जिसके कन्धों का माया पूरी तरह सहारा नहीं ले सकती। माया की बौद्धिक वृत्ति को यह अच्छा नहीं लगा। जैसे किसी तरह उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था।

मधुकर ने माया का हाथ भटकते हुए पूछा—“एक बार मौका दो माया।”

इतने में कला लौट आई। बिन्दिया के हाथ में शरबत के गिलास थे।

कला खिलखिला दी।

“ओह, तो यह चोरी चोरी बातें होती हैं। हमारे सामने लड़ाई, क्यों जीजी?”

माया सचमुच में ही लजा गई। मधुकर हँसने लगा। उसका गोरा मुख आरक्त हो गया।

: ३ :

कला का शरीर इधर कुछ भारी भारी हो रहा था। उसे मधुकर के सामने बाहर निकलने में लाज आती थी, इसीलिए वह देहली से अलीगढ़ माता पिता के पास चली गई। मधुकर कभी कभी माया से मिल लेता, परन्तु अधिकतर वह पत्र सम्पादको और सम्वाददाताओं के एक सम्मेलन की तैयारी में व्यस्त था। सेठ धनपति अभी विलायत में ही थे। माया का काम ठीक तरह से चल रहा है इस ओर से वह निश्चित से थे। माया ने सेठ साहब को एक पत्र लिखा।

सेठ साहब,

आपका कृपा पत्र पाकर अतीव प्रसन्नता हुई। इस मास छः लाख का बिजनेस मैं लाई हूँ। खन्ना साहे तीन लाख का लाया है। आप बिजनेस की ओर से किसी तरह की भी चिन्ता न करें। आपही की कृपा से आज इस स्थिति में पहुँची हूँ तो आपका विश्वासघात न करूँगी। आपके मुँह पर कितने अहसान हैं, जिनका बदला मैं इस जन्म में न दे पाऊँगी। सेठ साहब, आप इतने दयालु हैं कि मैं शब्दों में इसका वर्णन नहीं कर सकती। मुझे आपकी मित्रता का बहुत बड़ा सहारा है।

मेरे लिए यह भी प्रसन्नता की बात है कि आपने घूम घूम कर सब स्थान देखे हैं। आप फिर कभी गए तो मैं आपके साथ जाने का प्रयत्न करूँगी। आपके चले जाने के बाद विदेशी दूतावासों में बहुत से उत्सव हुए, पार्टियाँ भी हो गई परन्तु मैं तो एक में भी नहीं गई। अकेले जाना कोई बहुत अच्छा नहीं लगता।

अरे हाँ, आपने लिखा है जल्दी लौटने का प्रयत्न करूँगा। ऐसी जल्दी भी क्या है? देहली में विशेष क्या धरा है। आप घूम फिर कर अभी सब स्थान देख लीजिए।

आपके घर मैं कल गई थी, सोचा सब देख सुन आऊँ। बच्चे ठीक हैं। सेठानी भी स्वस्थ हैं। वह कह रही थीं कि उनके लिए

आप एक मुन्दर सा गहनो का 'भेट' खरीद लाये। दफ्तर के सुप्रिण्डेंट ने कहा है कि आपसे प्रार्थना करूँ कि उसके लिए एक अच्छी सी घड़ी आप लेते आए।

मैंने आपको सबके विषय में लिखा है। अपने विषय में कुछ नहीं लिखा, परन्तु मैं तो केवल यह चाहती हूँ कि आप सही सलामत भारत पहुँच जाएँ। जब आप विदेश जाने लगे थे तो एक बात मैं कहना भूल गई थी। आप यहाँ होते तो कह देती।

मैंने तो बहुत सोचा था उस समय कह दूँगी। परन्तु उस समय तैयारियाँ करने में व्यस्त रही, याद ही नहीं रहा कि आपसे कहती। आपको मेरे लिए कहना और लिखना एक ही बात है। मैं चाहती थी मेरे छोटे भाई विपिन के लिए आप किसी बैंक में छः सात हजार रुपया जमा करवा आए। वह इस वर्ष मैट्रिक कर लेगा। वहाँ विदेश में तो बड़ी सुविधा है। यदि वह वहाँ से विज्ञापन का काम सीख ले तो यहाँ फर्म में हाथ बटाएगा। यही काम मैंने उसके लिए चुना है। आशा है आप भी मेरी राय से सहमत होंगे।

दो तीन दिनों में मैं बिजनेस के सिलसिले में देहरादून जा रही हूँ। वही पुराना भगड़ा, आपको याद तो होगा। परन्तु चिन्ता मत कीजिएगा, मैं सब तय कर दूँगी।

अपने स्वास्थ्य का ख्याल रखियेगा।

आपकी कृपामिलाषिणी
माया।

डाक में यह पत्र माया ने अपने हाथ से छोड़ा था। कहीं दूसरा कोई इधर उधर न कर दे। पत्र डालने माया पैदल गई थी, रास्ते में कबाड मिल गया। उसने मसूरी जाने का प्रस्ताव किया। देहरादून में उसे भी काम था। माया ने मान लिया कि वह उसके साथ जाएगी। कबाड ने माया के साथ जाने का सब प्रोग्राम तय कर लिया।

माया बिना मधुकर मे मिले कबाड के साथ मसूरी चली गई । निमन्त्रण कबाड की ओर से था, इस लिए खर्चा सारा उसी ने उठाया । माया केवल तीन दिन के लिए आई थी ।

गर्मी का मौसम होने से मसूरी में बड़ी चहल पहल थी । होटल खचा-खच भरा था । सैर सपाटे के शौकीन और धनी इन्ही दिनों ही पहाड़ों पर जाते हैं । माया मेजर कबाड के साथ आ गई थी, परन्तु उसके मन मे निरन्तर द्वन्द्व चल रहा था । वह क्यों आई ? आखिर वह इतना थक गई थी कि उसे बिल्कुल चैन न था । वह मन ही मन अपने कृत्य के लिए कारण ढूँढती । कला अलीगढ चली गई थी । सुधाकर इसीलिये बहुत कम आता था । वह अपनी 'प्रेक्टिस' तथा आश्रम को लेकर व्यस्त था । माया को देहली मे रहते पाँच वर्ष हो गये थे, वह कभी बाहर न निकली थी । अब वह बाहर आ ही गई तो क्या ? माया के मन के किसी कोने ने कहा '... वह उस स्थिति के लिए भी तो तैयार होना चाहती है ...' जिसमे उसे सेठ धनपति के तीन हजार पौडों का मूल्य चुकाना पड़ेगा । उस अवस्था के लिए तैयार होने के लिये समय चाहिए । माया उसी एकान्त के लिये यहाँ आई है । वह अपने संस्कारो का गला घोट दे तो कैसा हो ?

मोहन होटल में मेजर कबाड तथा माया के मसूरी पहुंचने की पहली रात को ही डिनर और डान्स नाइट थी ।

होटल में ही कबाड की अपने एक पुराने प्रोफैसर खन्ना से मुलाकात हो गई । खन्ना ने कबाड तथा माया को फौरन निमन्त्रण दिया कि वह उस रात को खाना उसी के साथ खाएं । माया यात्रा की थकान मिटाने के लिए दोपहर के समय सो गई थी, और कबाड अपने 'हेडक्वाटर' में काम करने गया था ।

माया को देहली की गर्मी के बाद यह एकाएक ऋतु परिवर्तन से ऐसी स्फूर्ति मिली जैसे भरी दोपहर में धूमने के बाद उसने शीतल जल

से स्नान किया हो। मसूरी आने का उसका यह पहला अवसर था। निर्धन पिता की संतान होने से उसका जीवन प्रायः अभाव में ही कटा था। पिछले पांच वर्षों से उसने कभी लम्बी छुट्टी नहीं ली थी। अभी तक तो यह भी भय था कि किसी समय नौकरी न छूट जाए।

उस शाम को माया कही नहीं गई। कबाड उसके कमरे में बैठकर बातचीत करता रहा। माया ने ज्योत्स्ना के बारे में बात की तो कबाड ने उस बातचीत को बन्द करवा दिया और तय किया कि वह न मधुकर के विषय में बात करेंगे और न ही ज्योत्स्ना के विषय में।

होटल के डाइनिंग हाल में अलग अलग मेजों पर खाना खाने वालों के अलग अलग समूह बैठे थे। प्रोफ़ेसर खन्ना की मेज भी मेहमानों से भरी थी। एक युवक सफ़ेद कमीज तथा काली पतलून पहने आया। प्रोफ़ेसर खन्ना अपनी कुर्सी से उठ कर खड़े हुए— “आओ राजन, बड़ी देर कर दी। इनसे मिलो, मिस अनीता, कोटगढ़ के मिस्टर हार्वंड की बेटी हैं। मिस अनीता कासमोपालिटन होते हुए भी भारतीय संस्कृति को अधिक पसन्द करती हैं। अरे ‘‘ मैं राजन का परिचय देना तो भूल गया ? यह नौवल्टी स्टोर्स का मालिक है, हाल ही में विलायत से लौटा है। और यह हैं मेरे पढ़ाये हुये विद्यार्थी मेजर मन्मथनाथ कबाड और इनकी मित्र मिस माया।”

राजन ने हाथ जोड़ दिये। मेजर कबाड ने राजन के साथ हाथ मिलाया। वह हाथ जोड़ कर अनीता को भी नमस्कार करना चाहते थे कि अनीता ने अपना हाथ बढ़ा दिया। माया ने राजन की ओर देखा और राजन ने माया की ओर। राजन के साँवले मुख पर एक सलोना-पन था जिस पर माया की दृष्टि भी गई।

राजन ने अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई।

अनीता एक श्वेत चमकीले कपड़े का गाऊन पहने थी जो घुटनों से नीचा था। उसके बाल सिर पर एक जूड़े में बँधे थे, जिनमें सफ़ेद फूलों का गुच्छा लगा था। उसके कानों में हीरे के ‘टाप्स’ चमक रहे थे।

नाक सीधी और नुकीली थी, आँखें बहुत बड़ी न थी परन्तु थी भाव भरी। भौहें कमान की तरह कर ली गई थी। ओंठ पतले पतले और 'लिपस्टिक' से पुते थे।

“कुछ पीयोगे राजन ?” प्रोफेसर खन्ना ने मुस्कराते हुए पूछा।

“जी, मैं शरबत पी लूँगा।”

राजन की दृष्टि इस समय श्रीमती मेहरा की ओर उठी। श्रीमती मेहरा ने बाल बीच में से काढ़े हुए थे। जूड़ा सिर के पीछे बधा था। भाल पर लाल रंग का गोल टीका, आँखें बड़ी बड़ी, चेहरा गोल और भरा भरा। रंग अनीता से गेहुँआ। मुख पर पाऊंडर नहीं लगा था। उनकी मुखाकृति सौम्य थी तथा उससे भारतीयता का आभास मिलता था।

इतने में वाद्य वृन्द पर एक अंग्रेजी गत बज उठी। कबाड ने अनीता से नाचने के लिए कहा। वह सहर्ष तैयार हो गई। माया की आँखों से यह न छिपा रह सका कि कबाड की ओर अनीता विशेष रूप से आकर्षित हो गयी है।

कबाड ने अनुभव किया अनीता अच्छा नाचती है। कबाड स्त्रियों से बातें करने में अतीव पटु था। अनीता से बात करने लगा।

“आप प्रोफेसर खन्ना को बहुत दिनों से जानती हैं ?”

“नहीं, यही चार पाँच वर्षों से। यह बम्बई के कालेज में पेन्शन लेकर लौटे हैं तो पापा ने उन्हें मुझे पढ़ाने के लिए नियुक्त किया है।”

“ओह तो आप भी खन्ना माहब की विद्यार्थी हैं ?”

“जी, शिमला में यह मुझे पढ़ाते हैं। हर ‘सीजन’ शिमला में रह कर मैं ऊब चुकी थी, इसीलिए इस बार मसूरी आई।”

अनीता की गर्दन लम्बी थी, मोरनी की तरह इतरा रही थी।

खन्ना श्रीमती मेहरा के साथ नाचने लगा।

माया का पहाड पर पहला दिन था। उसे मर्दी लग रही थी इसीलिए उसके कन्धों पर शाल थी।

राजन के मुख पर कुछ ऐसा भाव था मानो वह माया की जान बूझ कर अवहेलना कर रहा है। माया ने सरसरी दृष्टि से इधर उधर देखा, जितनी महिलाओं को वह देख सकती थी। उसने देखा सब बहुत बढ़िया कपड़े पहन कर बैठी हैं। माया ने अपने कपड़े भी देखे। डेढ़ सौ रुपये की साड़ी थी, सेठ साहब बनारस से लाये थे। पशमीने का काश्मीरी शाल कला लाई थी। कानों में कीमती मोतियों के 'टाप्स' और हाथों में बैसे ही कंगन। राजन की उदासीनता से माया को बहुत दुःख हुआ। उसकी पुरानी मानसिक ग्रन्थि उभर आई। काश ! वह भी सुन्दर होती। वह घोर मानसिक यन्त्रणा से पीड़ित हो उठी थी कि उसी समय जैसे उसके कानों में किसी ने माधुर्य धोल दिया हो।

राजन उससे पूछ रहा था—“क्षमा करेगी, मैं नाचता नहीं हूँ, इसी लिए मौन हूँ। आपसे पूछा नहीं नाचने के लिए।”

“मैं स्वयं बहुत कम नाचती हूँ।”

राजन ने एक सिगरेट सुलगा ली।

“आप के मित्र तो बहुत अच्छा नाचते हैं।”

“हाँ, वह सैनिक हैं और उनका जीवन ऐसा है जहाँ नाचना अनिवार्य सा है।”

राजन ने गम्भीरता से माया की ओर देखा। काली केशराशी का बड़ा सा जूड़ा बँधा था। वह अपने नखशिख मुख तथा वेशभूषा से बंगाली सी दीखती थी और बोलचाल से देहली वाली। राजन अभी तय नहीं कर पा रहा था कि वह कहाँ से आई है। इसमें और कबाड में कहाँ समानता है। दोनों की मैत्री कैसी है।

राजन की आँखें माया का निरीक्षण कर रही थीं। माया की दृष्टि नीची थी।

“आप ... आप कहीं काम करती हैं ?”

माया की बड़ी बड़ी आँखें ऊपर उठी तो राजन ने उनमें बड़ी गहरी व्यथा को देखा।

“हाँ, मैं विज्ञापन फ़र्म में प्रतिनिधि का काम करती हूँ।”

राजन की भौंहें जरा पास पास तन आईं।

“भारत में भी ऐसी विज्ञापन फ़र्म हैं जहाँ स्त्रियाँ काम करती हैं?”

“हाँ, आपको अचम्भा किस बात पर है?”

“क्या आपकी फ़र्म लिमिटेड कम्पनी है या एक ही मालिक है?”

“एक ही मालिक है, सेठ धनपति। वह आजकल विदेश गए हैं।”

“ओह, ‘आई सी’। मैं उनसे मिला था। मुझे भारत लौटे केवल एक सप्ताह हुआ है। उन्होंने आपके विषय में बतलाया था कि उनकी फ़र्म की प्रगति के पीछे आपका कितना बड़ा हाथ है। वास्तव में उन्होंने मुझे आपसे मिलने के लिए भी कहा था। परन्तु यह तो मुझे पता नहीं था कि कम्पनी विज्ञापन की है। मैं समझता था कोई बिजनेस फ़र्म होगी। दिल्ली में किसी सरकारी होस्टल में कमरा लेकर रहती हैं आप?”

माया ने राजन की आँखों में देखते हुए कहा—“जी हाँ।”

नृत्य की वह धुन बन्द हो चुकी थी। प्रोफेसर खन्ना और कबाड अपने साथियों के साथ मेज पर लौट आए। राजन मौन हो गया।

मेजर कबाड के जबड़े फैले हुए थे। वह मुस्करा रहा था।

“अनीता बहुत अच्छा नाचती है।”

अनीता ने सिर झुका कर अपनी कृतज्ञता प्रकट की और मुस्करा कर उत्तर दिया—“मैंने नाचना अपने पिता से सीखा है।”

माया बोली—“आजकल आपके पिता कहाँ रहते हैं?”

“कोटगढ़। शिमला से चालीस मील दूर।”

खन्ना ने कहा—“मिस्टर हार्वर्ड आयरलैंड से भारत आए थे। वह ‘रोडवेज़’ यानी सड़क बनाने के विभाग में काम करते थे। एक बार काम के सिलसिले में कोटगढ़ गए। उन्हें जगह पसन्द आई। वहीं रह गए। अनीता की माता वहीं की रहने वाली सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हैं। मिस्टर हार्वर्ड वहाँ सेबों का व्यापार करते हैं।”

राजन ने सिगरेट का धुँआँ छोड़ते हुए उनकी ओर देखा, मानो

उसकी कोई दिलचस्पी नहीं, कोई सेबों का व्यापार करे या आलुओं का ।

खाना खाते समय भी थोड़ी बहुत बातचीत होती रही । माया ने देखा सुख सुविधा में रहने वाली अनीता बहुत ऊँची और बड़ी बड़ी बातें नहीं कर सकती । उसकी बातचीत का विषय वही है—जो प्रायः स्त्रियों का होता है । अनीता तो पूरी तितली है, उसकी बातचीत की सीमा और भी संकीर्ण है । फैशन और घुड़सवारी तथा 'रेस' से दूर केवल अभिनेत्रियों की बातें ।

'आरकेस्ट्रा' पुनः बज उठा ।

कबाड माया से बोला—“चलो माया, आओ ।”

“नहीं, तुम अनीता देवी के साथ नाचो । मेरी यात्रा की थकान अभी दूर नहीं हुई ।”

सब लोग नाचने लगे तो राजन बोला—“घूमने चलेंगी ?”

माया ने राजन की ओर देखा ।

“कितनी दूर चलियेगा ?”

“आप सचमुच मे थकी हैं ?”

“हाँ ।”

“तो रहने दीजिये ।”

“नहीं, थोड़ी दूर जा सकती हूँ ।”

राजन मुस्करा दिया । उसकी भवें ज़रा ऊँची चढ़ गई ।

“तो आप थकी भी हैं नहीं भी थकी । क्यों ?”

माया राजन की आँखों में देख कर हँस दी ।

एक ! दो ! तीन ! माया का हृदय तीन बार धड़का “” चार बार धड़का । अरे ! यह क्या है ? उसके सिर में जैसे चक्कर सा आ गया ।

माया ने पानी पी लिया ।

राजन उसकी ओर ध्यान से देख रहा था ।

“आप शायद स्वस्थ नहीं हैं ?”

“नहीं। न जाने यह चक्कर अभी तक भी आ रहे हैं। सिर घूम रहा है।”

कबाड और अनीता भी आ गए।

माया बोली—“मैं कमरे में चलती हूँ, मेरी तबीयत अच्छी नहीं।”

कबाड बोला—“सच, बड़े अफ़सोस की बात है। तुम तो देहली की गरमी से ऊब यहाँ आनन्द मनाने आई थीं।”

“आज थकी हूँ। कल तक आशा है अच्छी हो जाऊँगी।”

आरकेस्ट्रा पर ‘रम्बा’ बज उठा। खन्ना को माया ने धन्यवाद दिया। बाहर जाने के लिए तैयार हुई तो राजन भी साथ हो लिया।

“चलिए मैं आपको कमरे में पहुँचा दूँ। कौन सा कमरा है आपका?”

“तीन।”

“अरे! कैसा संयोग है? मेरा कमरा आपकी बगल में है, पाँच।”

“तो आप भी यहीं ठहरे हैं?”

“हाँ, क्यों?”

“मेने सोचा था आपका यहाँ घर होगा।”

“नहीं, यह मसूरी वाली दूकान मेरे चाचा की थी, उनकी मृत्यु हो जाने के बाद मैं यहाँ आया हूँ।”

“ओह।”

माया चुप हो गई।

दोनों हॉल से बाहर निकल आए।

सीढ़ियाँ चढ़ते समय राजन पीछे था। माया ‘रेलिंग’ को पकड़कर चढ़ रही थी। एकाएक वह पास आकर बोला।

“मैं सहारा दूँ?”

माया ने हाथ बढ़ा दिया। राजन ने अपनी बाँह से सहारा दिया और कमरे की ओर ले चला।

मोम के मोती

माया जैसे निढाल हो रही थी। मेहनत से बनाया जूड़ा सीढ़ियाँ चढ़ते चढ़ते ही खुल गया।

उसके लम्बे केश राजन की बांह पर गिरे तो वह उन्मत्त हो उठा।

राजन ने दरवाजा खोला, माया को भीतर ले गया।

“लीजिए, आप फौरन लेटेगी या कुर्सी पर आराम करेंगी?”

राजन का स्वर बहुत मीठा था।

आज वर्षों बाद पहली बार माया को ऐसा पुरुष मिला है जो उस पर व्यंग्य नहीं कर रहा, जो उसके स्वास्थ्य के लिए चिन्तित है। उसके पिता ऐसे थे।

माया चप्पल उतार कर साथ वाले गुसलखाने में चली गई और साड़ी उतार कर सलवार कुरता पहन आई। राजन कुर्सी पर बैठा एक पत्रिका देख रहा था। माया बिस्तर में चली गई।

“बेयरा से कहूँ, आपको दूध दे जाए?”

“नहीं, मैं दूध तो पीती नहीं, कॉफी कह दें तो कृपा होगी।”

“चक्कर आने पर कॉफी? दूध ही लीजिए।”

“नहीं, वह मुश्किल है।”

“अच्छा, आप आराम कीजिए। कॉफी मैं भेजता हूँ।”

“मैं आभारी हूँ, आपने इतना कष्ट उठाया मेरे लिए।”

“कष्ट कैसा? और फिर यह किसी को तो करना ही पड़ता। आपके मित्र अनीता देवी के साथ व्यस्त थे। मैं आपको यहाँ ले आया। मैं साथ वाले कमरे में हूँ। यदि आपकी तबीयत न सम्भली तो बुलवा लीजिएगा, मुझे असुविधा न होगी।”

“तो आप हॉल में लौटेंगे नहीं?”

“नहीं, जी नहीं चाहता।”

माया को लगा, उसके मन का कोई कोना खुशी से भर उठा है। जैसे कहीं अन्धकार में कोई दीपक रख गया हो।

मोम के मोती

“अच्छा तो माया जी मैं चला ।”

माया ने हाथ जोड़ दिए ।

उस रात माया देर से सोई । उसके कमरे की बत्ती बड़ी देर तक जलती रही । माया सुनती रही कहीं कोई चहल कदमी कर रहा है । किसी के पाँव की आवाज आती रही । माया आधी सोती रही, आधी जागती रही । वह चहल कदमी की आवाज उसके मन में पुलक भरती रही ।

: ५ :

मधुकर माया से मिलने गया तो बिन्दिया ने बतलाया, बीबी रानी चार दिन के लिए बाहर गई है । मधुकर को बुरा लगा । उसे बिना बतलाए ही चली गई ? किसके साथ गई ? कहाँ गई ? वह उसके दफ्तर से पता करने गया । वहाँ भी केवल यही सूचना मिली कि केवल चार दिन की छुट्टी गई है । दो दिन व्यतीत हो गए हैं और दो दिन शेष रह गए हैं । यह सुन मधुकर को तसल्ली हुई ।

मधुकर को आज के दिन माया की विशेष रूप से आवश्यकता थी । उसके होश उड़े हुए थे । वह ‘अहं’ जिसकी मोहर उसके मुख पर सदैव लगी रहती, इस समय मिट गया था । उसे विश्वास था कि माया होती तो सब सम्भाल लेती । मधुकर के लिए इससे बड़ी भर्त्सना की बात और क्या हो सकती है कि सुधाकर आश्रम की एक स्त्री चम्पा को लेकर कहीं चला गया है । अपनी जमी हुई ‘प्रेक्टिस’ को छोड़ कर, अपनी बनी हुई इज्जत पर बट्टा लगा कर चला गया है । भाई के लिए एक दो पंक्तियों का खत छोड़ गया है ।

“भैया, तुम शायद मेरी सूरत से भी घृणा करो । मैं जीवन में सदैव नवीनता का उपासक रहा हूँ । मुझे नवीनता ही पसन्द है । इधर

पिछले तीन चार मास से मैं ऊब गया था। मैं कहाँ जा रहा हूँ मैं स्वयं नहीं जानता। वहाँ से पत्र लिखूंगा जब कभी समय मिला—सुधा।”

मधुकर का कवि हृदय कला के लिए सहानुभूति से भर उठा। कुछ ही महीनों में वह माँ बनने जा रही है। उसके लिए यह समाचार कितना घातक होगा। वह इसे कैसे सहन करेगी? बिन्दिया का पति नेतासिंह मेहतरानी को लेकर भाग गया, यह सुधाकर चम्पा को। दोनों की मनोवृत्ति एक जैसी है। कला जैसी भोली पत्नी को धोखा !! छी: छी:।

मधुकर यह तय नहीं कर पाया कि वह अलीगढ़ जा कर कला को यह समाचार सुना दे या मौन रहे। एकाएक उसे विचार आया—बिन्दिया को वह क्यों न कला की देखभाल के लिए अलीगढ़ छोड़ आए। नहीं, माया को तकलीफ होगी। उसके प्रति यह अन्याय है। ऐलिस? नहीं नहीं, वह घृणित कीड़ा! नहीं ऐलिस ही ठीक है। कला की सहेली है। उन दोनों में अच्छी पटेगी। कला को सुधाकर के पत्रों का उत्तर मिले या न, वह ऐलिस से प्रसन्न रहेगी। दोनों सखियाँ बातचीत करती रहेंगी।

मधुकर जो ऐलिस को देख घृणा से ऐंठ जाता था, उसका पूंजीवादी ‘अहं’ कभी भी ऐलिस को स्वीकारता न था, आज परिस्थिति की विषमता से विवश हो, ऐलिस के पास गया। बच्ची को जन्म देने के बाद, अभी ऐलिस के मुख पर पीलापन छाया हुआ था, स्वास्थ्य लौटा नहीं था। मधुकर के मन में यह भी विचार आया कि कला के घर में रह कर उस का स्वास्थ्य निखर जाएगा।

ऐलिस अलीगढ़ जाने के प्रस्ताव को सुन कर प्रसन्न हुई। जॉन ने अभी तक विवाह के लिए कोई इच्छा नहीं प्रकट की थी। बिना ब्याह के माँ बन जाने से ऐलिस ने इतना बड़ा पाप किया था, जिसका समाज में कोई समाधान नहीं था, जब तक ऐलिस के पास पैसा न हो। जॉन का मदिरापान अभी भी न छूटा था और न ही अभी तक उसने ब्याह करने की कोई उत्कण्ठा ही दिखाई थी।

ऐलिस दो घण्टे में तैयार हो गई। मधुकर उसे उसी दिन अलीगढ़ पहुंचा आया। कला ने लजाते लजाते सुधाकर के विषय में पूछा था। मधु ने उत्तर दे दिया था कि वह आजकल 'प्रेक्टिस' में व्यस्त है। वह कला की बहुत चिन्ता करता है। अलीगढ़ में कला का मन लगा रहे इसीलिए उसने ऐलिस को भेजा है। कला प्रसन्न हो उठी थी। सचमुच ही वह सौभाग्यवती है जो सुधा जैसा पति मिला। नारी का विश्वास जो ठहरा। वह माया के प्रति कृतज्ञता से भर उठी, जिसने उसे ऐसा पति पाने में सहायता दी है।

मधुकर लौटा तो सीधा माया के होस्टल पहुँचा। वह उसे कमरे में उपस्थित देख हैरान हो गया। उसे प्रसन्नता भी हुई। जीवन में पहली बार उसने अनुभव किया, माया में कितनी शक्ति है। माया जैसी नारी कितनी सबल है। मधुकर जैसे पुरुषों को भी सहायता दे सकती है। कॉफी हाऊस में, रेस्तरा में, बैठ कर वह माया जैसी नारियों की आलोचना करता है। उनके चरित्र पर लाछन लगाता है। समाज में नारी की इस परिवर्तित दशा की ओर उसका ध्यान केवल छिद्र निकालने के लिए ही जाता था। मन ही मन उसे ग्लानि भी हुई। ऐसी नारी में उतनी शक्ति है कि विपत्ति के पाले में अपनी शक्ति की धूप दे सके।

“कहाँ गई थीं माया ?”

“मसूरी, बैठिये न।” माया का स्वर अलसाया था।

“मे एक बार यहाँ से हो गया हूँ।”

“मैं सुन चुकी हूँ। कहिए क्या बात है ?”

“तुम एकाएक मसूरी चली भी गई और लौट भी आई।”

“हाँ, गई तो थी, सोचा था वहाँ चार पाँच दिन ठहरूंगी, परन्तु जाते समय तबीयत खराब हो गई। एकाएक लौट आई हूँ।”

कबाड के साथ जाने की बात माया ने छिपा ली। कबाड केवल उसका मित्र भर है। इससे अधिक बिल्कुल कुछ नहीं। वह नहीं चाहती उसका नाम जहाँ तहाँ माया के साथ आए। फिर मधुकर रूढ़िवादी

है। वह इस मैत्री की पवित्रता नहीं समझ सकता। स्त्री पुरुष का सम्बन्ध उसके विचारों में केवल एक है और सदैव वह यही समझता है कि इस के अतिरिक्त कोई और सम्बन्ध नहीं हो सकता। एक बार वह माया से कह भी चुका है—पुरुष पुरुष में बौद्धिक समझौता हो सकता है, नारी और पुरुष में मन का और शरीर का सौदा होता है। माया पूर्णतया जानती है ऐसे पुरुष नारी को केवल मनोरंजन मात्र समझते हैं।

मधुकर का मुख चिन्तित था। गौर वर्ण जैसे काला पड़ गया था। उसके विचार संकीर्ण थे। मर्यादा की भावना, साधारण लोगों से बढ़ कर थी। कवि होने से वह संवेदनशील भी था। उचित अनुचित के लिए वह अपने को दोषी समझता था। सुधाकर का, व्याहता स्त्री को छोड़ दूसरी से भी सम्बन्ध हो सकता है, यह मधुकर के लिए बड़ी निर्लज्जता की बात थी।

माया उसके मुख पर आने वाले भावान्तर को देख रही थी। माया यह समझती है कि मधुकर इस समय यह चाहता है कि माया उससे पूछे, क्या बात है, तुम इतने चिन्तित क्यों हो? यह भी पुरुष का एक रूप है, मुह उठाये चले आते हैं कि नारी इन्हे स्नेह से दुलारे, पुचकारे। शायद ऐसे व्यक्ति जीवन भर बच्चे बने रहते हैं। यदि कभी नारी से बात करते भी हैं तो खीझ कर, व्यग्र कर, जैसे उसके सिर पर एहसान कर रहे हों। माया ने सौभाग्य से ऐसा पुरुष भी देखा है जो नारी से सरक्षण नहीं चाहता, नारी की रक्षा कर सकता है। यह मधुकर उसकी ओर कैसी दृष्टि से देख रहा है? जैसे गलती करके नौकर मालिक की ओर देखता है। उसमें याचना तथा स्वामिभक्ति की भावना रहती है।

“क्यों, कुछ विशेष घटना हुई है?”

“हां माया, सुधाकर चम्पा को लेकर भाग गया।”

माया पर उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई, मधुकर ने वह बिना देखे सिगरेट जला ली और कुर्सी से उठ कर खड़ा हो गया। माया को जैसे

मत्तली आ रही हो। छी: छी: ! सुधाकर चम्पा को लेकर चला गया। चम्पा भी चली गई, उसी पुरुष के साथ, जो कला का पति है। उसी कला का जिसने चम्पा को जीवन दान दिया है, मृत्यु के मुख से बचाया है। चम्पा शायद जीवन से तंग आ गई थी। सुधाकर ने टूटी चम्पा को बिल्कुल मसल देना चाहा। कृतघ्नता और बेवफ़ाई का यह घृणित उदाहरण !!

माया के मन में एक साथ अनेक विचार आए। पुरुष में जो शोषण की भावना रहती है उसी के फलस्वरूप सुधाकर ने यह अत्याचार कला पर किया है। माया के सामने पिछले चुनाव का दृश्य धूम गया। नारी को वोट का अधिकार है। नारी वोट दे सकती है। वोट से क्या होगा? परम्परा से चला आता पुरुष का स्वामीत्व समाप्त हो जाएगा? कला कौन सी 'कोर्ट' में जाकर अपने अधिकार की मांग करेगी? अपने पति का वापिस मांगेगी? शायद उसके लिए अभी 'कोर्ट' नहीं है। बिन्दिया ने गाली दी थी, रोई थी, उसका पति मेहतरानी को लेकर भागा था। मेहतरानी का ब्याह भी हो चुका था, वह तीन बच्चे छोड़ कर भागी थी।

माया का थका मन बिल्कुल चकनाचूर हो गया। एक क्षण के लिए उसे यह सन्तोष हुआ कि वह उन सब नारियों से अच्छी है। कम से कम उसने पुरुषों को अपने पर विजय पाने का अधिकार नहीं दिया।

मधुकर ने सिगरेट का एक लम्बा सा कश लेते हुए कहा—

“उसने तो मेरी नाक काट दी।”

“किसी का दिल कट गया, आपको नाक की पड़ी है। जो शायद पहले भी नहीं थी।”

“तुम अन्याय कर रही हो माया !”

“अन्याय? वह तो पुरुष का एकाधिकार है।”

“मेरे भाई के लिए तुम मुझे दोषी ठहरा रही हो?”

“नहीं, दोष बेचारी कला का है जो सुधाकर की बातों में आ गई।”

“मुझे भी कला के लिए अफसोस है। ऐलिस को उसके पास छोड़ आया हूँ।”

माया को अचम्भा नहीं हुआ। केवल मधुकर की कायरता की पुष्टि हो गई। भाई का दोष छिपाने के लिए वह ऐलिस को कला के पास छोड़ आया है।

मधुकर ने डरते डरते माया से कहा—

“मैंने कला को नहीं बतलाया।”

“मैं समझती हूँ। यह दोहराने की आवश्यकता न थी।”

“तुम कहाँ गई थी।”

“बतलाया था न, मसूरी।”

“कोई काम था?”

“नहीं, सैर के लिए। हवा बदलने के लिए।”

“बहुत जल्दी लौट आई हो।”

“हाँ, आप भी तो यही चाहते थे, चोट सहने वाला कोई साथी हो।”

“सच कह रही हो। जाने सुधा को यह क्या सूझा?”

“पुरुष को जो कुछ सूझता है—‘नवीनता’।” माया ने गम्भीरता से उत्तर दिया।

मधुकर चुप हो गया। यही शब्द तो सुधाकर ने भी लिखा था। माया की बुद्धि अज्ञात को भी ज्ञात कर लेती है।

“बिन्दिया का पति लौटा?”

“जाने वाले बहुत कम लौटते हैं। कायर तो बिल्कुल ही नहीं लौटते।”

“सुना है वह किसी और में दिलचस्पी लेती है।”

“हाँ। आप क्यों पूछ रहे हैं? शायद आपको सुन कर दुःख पहुँचे, यानी आपके संस्कार इसे घृणित समझें कि वह दूसरी शादी कर रही है।”

“तुम सच कह रही हो माया । खैर छोड़ो इस बात को ।” मधुकर ने माया का हाथ पकड़ने का प्रयत्न किया ।

“यह देखिये, आप क्या करने जा रहे हैं ? शायद आप भी घृणित हो जायेंगे क्योंकि इसी हाथ को सेठ धनपति कई बार पकड़ चुके हैं ।”

मधुकर के मुख का रंग स्याह पड़ गया । उसने माया का हाथ छोड़ दिया ।

“क्यों ? बस इतना ही प्रेम जतलाने चले थे ? सब काफूर हो गया ?”

मधुकर के सम्मान को तो चोट लगी, परन्तु उसके पुरुषत्व के लिये भी माया एक चुनौती दे रही थी ।

“तुम नीच हो ।” मधुकर क्रोध से लाल हो कर बोला ।

“ओह ! इतनी मजाल ? मेरे ही घर में मेरा अपमान ! आप बाहर निकल जाइये ।”

“अभी तुम किसी के साथ मसूरी गई थी ? सेठ के टुकड़ों पर जीनी हो ।”

माया में न जाने कहाँ से साहस आ गया । उसने उठ कर तडाक से एक तमाचा मधुकर के मुख पर रसीद कर दिया ।

“निकल जाओ, खबरदार कभी अपनी सूरत दिखाई तो । मैं जैसी भी हूँ, अच्छी हूँ । मुझे किसी से कुछ लेना देना नहीं है ।”

मधुकर बाहर चला गया । उसका भी अपमान हुआ है । घोर अपमान । वह बदला चुका लेगा । जाने से पहले वह कहता गया, ऊँचे स्वर से—“तुम वेश्या हो ।”

माया ने उसके प्रत्युत्तर में अपना दरवाजा तडाक से बन्द कर लिया ।

माया का शरीर क्रोध से काँप रहा था । वह बुरी है, यह तो वह भी जानती है । उसने मती बनने का दावा कभी नहीं किया । परन्तु यह गाली—‘तुम वेश्या हो ।’ अभी पाच मिनट पहले इसी वेश्या का हाथ पकड़ना चाहता था । भाई के पाप का ऐसा बदला ? शायद

इनकी मर्यादा का खोखला घड़ा टूट गया है। भूठा दर्प चूर चूर हो गया है।

उस दिन माया कही बाहर नहीं गई।

: ६ :

सेठ धनपति विदेश से लौट आए हैं। वह माया के लिए हाथ में बाँधने वाली एक हीरे की जडाऊ घड़ी लाए हैं। माया मन ही मन उस दिन की प्रतीक्षा कर रही है, जब सेठ साहब अपनी दो हुई वस्तुओं तथा तीन हजार पौडों के बदले में माया से कुछ मांगेंगे। शायद इस बार उसका कौमार्य ...

माया देहली से सात आठ दिन बाहर रही है, वह छाया के विवाह में गई थी। माया ने केवल वह मोतियों का 'सेट' अपने लिए रखा था और सब 'सेट' छाया के विवाह में दे दिये थे। विवाह औसतन हो गया था, जैसा प्रायः मध्यवर्गीय लड़कियों का हुआ करता है। बाजे बजे थे, धूम धाम हुई थी, बारात में चालीस पचास आदमी आए थे। माया तथा उसकी माँ ने देहज का प्रबन्ध किया था। इक्कीस जोड़े दिये थे।

अम्बाला में माया बहुत वर्षों के बाद आई थी। बीच में दो तीन दिन के लिए कभी आ पाती थी। छः सात दिन रहने के लिए तो पहली बार आई थी। सरला की माँ ने बीच वाली दीवार से भाँक कर कहा था—“माया की माँ ! आ गई तुम्हारी कमाई करने वाली लड़की।” स्वर में तीर की तरह चुभने वाला व्यंग्य था।

माया सब समझती थी। वह बात जिस लहजे में कही गई थी केवल वह लहजा ही यह प्रदर्शित कर देता था कि तुम्हारी कमाई करने वाली वह पुत्री आ गई, जो गुप्त तथा घृणित उपायों से धन कमा कर तुम्हें भेजती है और जिसकी कमाई पर तुम लोग जीवित हो।

अम्बाला मे माया ने बहुत कुछ सुना । विपिन भी सोलह वर्ष का हो चुका है, उसने भी माया से झिझकते झिझकते यह कहा था—
“जीजी यह लोग, हमारे पड़ोसी वगैरह तुम्हे अच्छा नहीं समझते । वह तुम्हारे बारे में बुरी बुरी बातें कहते हैं ।”

माया को भाई की इस बात पर कितनी जलन हुई थी । हृदय मे कितनी कड़वाहट पैदा हुई थी । बहन तथा माँ के लिए उसने क्या नहीं सहा । लाँछना, ताने, व्यंग्य और अफसरोँ की चापलूसी की थी । छाया की शादी के लिए माया आई है । विपिन विलायत चला जाएगा । माया माँ को देहली ले जाएगी । अम्बाला कभी झाँक कर भी न देखेगी । जब उसके पिता का देहान्त हुआ था, तो बड़ी मुश्किल से, गिने चुने उनके रिश्तेदार आए और अर्थी के साथ हो लिए थे । उसके बाद जब उनके घर की एक एक वस्तु बिकने लगी थी, तब कोई नातेदार आगे नहीं बढ़ा था, कि दस पन्द्रह रुपया महीने की मदद कर दे । छाया के ब्याह मे सब के सब बिना बुलाये ही पधार गए थे ।

माया के चरित्र पर उसके सामने बैठ कर टीका टिप्पणी हुई । माया मौन रही । उसने किसी की बात का उत्तर नहीं दिया था । वह क्यों बोलती ? वह तो वापिस चली जाएगी, बातें करने वाले करते रहेंगे ।

विवाह के बाद छाया ससुराल चली गई तो माया सब हिसाब चुकता कर देहली लौट आई । माया के साथ विपिन भी आ गया है । सेठ धनपति विपिन के लिए विलायत में एक फ़र्म के साथ काम सीखने का प्रबन्ध भी कर आए थे । एक कालेज में आगे पढने के लिए दाखिला भी दे आए थे । इतना उन्होंने अपने लड़के के लिए भी न किया था ।

माया की माँ बोली थी, छाया एक बार और मैके आ कर लौट जाए, विपिन को माया जहाज में बम्बई छोड़ आए, तब वह देहली आ जाएंगी । छाया ससुराल चली गई तो माया की माँ ने उसके पाँव पकड़ लिए और बोली—“मेरी बच्ची यह छाया का भार मेरे सिर से केवल

तुमने उतारा है, नहीं तो कौन करता ? मैं तो बिल्कुल अपाहिज हूँ ।
भगवान तुम्हें सुखी रखे ।”

माया की माँ ने भी लोगो की बातें सुनी थी । परन्तु उसने एक बार भी माया को दोष नहीं दिया । जैसे माया का उसमें कोई दोष नहीं । माया को माँ का चुप रहना खटका था । वह सोचती रही, अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उसकी माँ इतनी गिर सकती है ? एक बार भी तो उसने नहीं पूछा—‘तुम्हारे बारे में लोग जो कुछ कहते हैं, क्या वह सच है ?’ शायद वह पूछे किस मुँह से ? पिछले पाँच छः वर्षों से उन्हे यदि किसी का सहारा है, तो केवल माया का । नारी का, तिस पर माँ का, यह भी तो रूप है कि वह रुपये के लिए लॉछन लेने को तैयार है । शायद पिता भी निस्सहाय होते तो ऐसे ही मौन हो सब मुनते रहते । मनुष्य मात्र ऐसा है ।

माया, छाया की शादी से लौटी तो सेठ धनपति के घर पर सेठानी जी से मिलने और मिठाई देने गई । वहाँ सेठ साहब के पास राजन भी बैठा था । सेठ धनपति ने परिचय करवाया । माया ने हाथ जोड़ दिए । राजन मुस्करा दिया । उसने प्रदर्शित नहीं किया वह माया को पहले से जानता है । माया अपने अनुभव से सीख गई थी कि जिस बात के उल्लेख से कोई लाभ न पहुँचता हो, उसे छेड़ना फिजूल है, जब तक वह प्रसंग स्वयं न खुल जाए ।

सेठ धनपति ने उसका परिचय देते हुए कहा—“यह वही माया देवी हैं राजन साहब, जिनके विषय में, लंडन में आप से बातचीत हुई थी । मेरी फ़र्म की सफलता का सबसे बड़ा रहस्य ।”

राजन ने नम्रता से कहा—“बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिल कर माया जी ।”

माया सिहर गई ।

सेठ साहब चाय के लिए कहने घर के भीतर चले गए ।

राजन मुस्करा कर बोला—“अब कैसी हैं आप ?”

माया ने देखा राजन के मुख का साँवलापन एक अद्भुत छटा से चमकता है।

“अच्छी हूँ।”

“देहली में तो नहीं थी आप?”

“जी नहीं, मे बहन की शादी में अम्बाला गई थी।”

“बड़ी बहन?”

“नहीं छोटी।”

“अरे!” राजन ने विनोदपूर्ण विस्मय से कहा।

माया लाल हो उठी। उसका साँवला मुख आरक्त हो गया। राजन से छिपा नहीं रहा। माया का दिल धड़क रहा था।

“कही, आपकी तबीयत फिर तो खराब होने नहीं जा रही?”

माया शरमा कर चुप रह गई।

“आप इतना लजाती हैं, फर्म का काम कैसे करती होंगी?”

“आप को देख कर न जाने क्या हो गया है। मैं ऐसी शरमीली नहीं हूँ।”

“इसीलिए चोरी चोरी मसूरी से भाग आई, मिली भी नहीं? रात को कमरे में छोड़ा, दूसरे दिन गायब। आपके मित्र से पूछा, वह स्वयं कहने लगे, नहीं जानता कहां चली गयी हैं। साथ आई थीं। कम से कम बतला कर तो जाती कि लौट रही हैं।”

माया ने उत्तर नहीं दिया। सेठ साहब भीतर से लौट आए।

माया की ओर देख कर बोले—“अरे, तुम्हें प्रसन्नता होगी माया, यह राजन साहब, तुम्हारे विचारों के आदमी हैं। अपनी आय का मुख्य भाग यह अपनी मिलों के ‘वेलफ्रेयर’ काम में खर्च करते हैं। विलायत में भी लेबर वेलफ्रेयर कान्फ्रेस (मजदूर हितकारी सम्मेलन) में एक सदस्य के रूप में भारत से गये थे।”

न जाने माया की ज़बान पर ताला कैसे लग गया। वह बोलना चाहती थी, कुछ कहना चाहती थी, परन्तु उसके मुख से कोई बात नहीं

निकली। न जाने क्यों माया का मन क्षुब्ध हो उठा। उसके नाखूनों पर लगा लाल पालिश उसकी आखों में चुभने लगा। उसका जी चाहा, अभी किसी तरह से उसे कुरेद दे, पोछ दे। ओंठों पर पुती 'लिपस्टिक' भी उसे लगा, कड़वी है।

सेठ साहब, सेठानी और बच्चों को लेकर सिनेमा जा रहे थे। उन्होंने बड़ा आग्रह किया माया भी उनके साथ चले। माया ने 'न' कह दिया, क्योंकि उसका भाई विपिन घर पर उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। वह दोनों आज सुबह ही तो अम्बाला से लौटे हैं। देहली में वह दूसरी बार आया है। एक बार माया बीमार थी, तो आया था। वह शहर के रास्ते आदि, नहीं जानता। इतनी देर उसे अकेला छोड़ना ठीक नहीं।

सेठ धनपति मन ही मन भुझला रहे थे। जब से वह लौटे हैं, माया से अभी तक उनकी एकान्त में बातचीत नहीं हुई। सदैव कोई न कोई उपस्थित रहता। आज वह सोच रहे थे, सिनेमा देखने वह उनके साथ जाएगी, तो वह उसके साथ बैठेंगे। सेठ साहब पैसे के बल पर विदेश में बहुत सी नारियों से खेल चुके थे। अब उनकी लालसा भड़क चुकी थी। वह माया को अपना शिकार बनाना चाहते थे। उनके मन में यह विचार घर कर गया था, कि माया अभी तक अछूती है। उन्होंने उसे कहाँ से कहाँ तक पहुँचाया है, अब उसे पाने का अधिकार भी उन्हीं को है। आज जरा सा अवसर मिलने वाला था।

चाय पीते समय भी राजन और सेठ साहब ही अधिक बातचीत करते रहे। माया नहीं बोली। राजन बीच बीच में माया को देख लेता। माया चाय की प्याली लेकर सेठानी के पास चली गई।

बरसात शुरू हो चुकी थी। आज एकाएक आकाश बादलों से घिर गया, बादल बरसने लगे। छः, साढ़े छः का समय था। सेठानी आज कई दिनों के बाद सेठ के साथ सिनेमा देखने जा रही थी। सेठानी बाहर जाने के लिए बड़ी उतावली हो रही थी। माया से उनकी जल्दी छिपी न रही। वह सेठ साहब को समय की याद दिलवाने गई।

सेठ बोले—“इस समय वर्षा हो रही है, चलो तुम्हें घर छोड़ता चलूंगा।”

राजन ने बीच में ही कहा—“आप क्यों कष्ट करते हैं ? मायादेवी को मैं इनके घर पहुँचा दूंगा।”

सेठ साहब को यह प्रस्ताव बहुत अच्छा न लगा, परन्तु वह किसी तरह सहमत हो गए। सेठानी भी साथ थी, अधिक जोर देने पर वह उनके मन की बात जान जाती।

न जाने क्यों माया, राजन की बगल में बैठते ही, पुलक से भर उठी।

माया बोली—“आपने यों ही कष्ट किया।”

“क्या आप चाहती न थी कि ऐसा कष्ट करूँ ?”

माया ने उत्तर नहीं दिया।

“सच कहिये क्या वास्तव में आपका भाई घर पर प्रतीक्षा कर रहा है ?”

“नही, वह अपने एक मित्र के साथ कुतुब गया है। पर आपने कैसे समझा कि मैंने सच नहीं कहा था ?”

राजन खिलखिला दिया।

“मैं कब कह रहा हूँ कि आप भूठ कह रही थी। जो उचित था आपने वही किया।”

राजन ने मोटर तेज कर ली। वर्षा के छीटे माया को भिगो रहे थे। शहर से दूर निकल आए तो माया ने पूछा—“कहाँ चल रहे हैं आप ?”

“अपनी शक्कर मिल में आपको ले जा रहा हूँ।”

“कितनी दूर है ?”

“देहली से पन्द्रह मील।”

“इस समय वर्षा हो रही है। लौटने में देर हो जाएगी।”

“मैं आपके साथ हूँ।”

माया मुस्करा दी। राजन ने माया की ओर देखा।

“क्यों, आपको शायद ऐसा पुरुष आज तक नहीं मिला ? मान न मान मैं तेरा मेहमान ।” राजन ने धीरे से कहा ।

“मेहमान तो मैं हूँ । मोटर आपकी है ।”

राजन हँस दिया । माया को लगा राजन को वह पहले से जानती है । आज उसके साथ पहली बार ही नहीं आई । वह एक अदृश्य अपनापन महसूस कर रही थी ।

“आप भी ‘वेलफेयर’ का काम करती हैं ?”

“व्यक्तिगत रूप से । किसी संस्था की सदस्य बन कर नहीं ।”

“मैं किसी संस्था का सदस्य नहीं हूँ, यह मेरा जीवन है ।”

माया ने प्रश्न नहीं पूछा कि यह तुम्हारा कैसे जीवन है ।

राजन बोला—“आप शीशा चढ़ा लीजिए वर्षा से भीग जाएंगी ।”

“मोम की नहीं बनी हूँ ।”

“मैं जानता हूँ, आप लोहे की हैं ।”

“नहीं, केवल हाड़-मांस की ।”

“वह भी मैं जानता हूँ और यह भी सुन चुका हूँ सेठ साहब से कि कैसे आप एक क्लर्क भर्ती हुई थीं और फिर वही से आपने प्रतिनिधि के पद तक उन्नति की है ।”

“सब कोई आपकी तरह लाखों रुपया बैंक में होने पर पैदा नहीं होते ।”

राजन हँसा नहीं, गम्भीर हो गया ।

“मैं लाखों रुपया बैंक में होने पर नहीं जन्मा था । मेरा जन्म उस समय हुआ था जब मेरी माँ के पास आठ आने के पैसे भी न थे कि वह गुड़ मंगवा कर खा ले । कोई पड़ोस की स्त्री भी पास नहीं आई कि उसे मदद कर देने पर थोड़े से रुपये भी देने पड़ जाएंगे । जच्चा के लिए दो घूट दूध देना पड़ेगा ।”

माया ने हतप्रभ होकर राजन की ओर देखा । राजन ने मोटर एक बड़े से पेड़ के नीचे खड़ी कर ली ।

“क्यों ? अचम्भा हो रहा है आपको ? मैं एक मजदूरिन का पुत्र हूँ, जिसके पिता का पता नहीं । माँ विधवा थीं और कानपुर की एक शक्कर मिल में मजदूरी करती थी, और मैं पैदा होने वाला था, इससे बढकर उनके लिए लज्जा की और क्या बात हो सकती थी । मेरे जन्म के बाद उन्हें कानपुर छोड़ना पड़ा । कोई नौकरी नहीं देता था । वह कानपुर से पैदल मुझे खुरजा ले आई । उन्हें रास्ते में किन किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उसका वर्णन न माँ ने मुझसे किया है और न मैंने उनसे पूछा है । उन कठिनाइयों का, कोई भी व्यक्ति जो ज़रा भी कल्पना रखता हो, संसार की कठिनाइयों को ध्यान से देखता हो, परिचित हो सकता है । मेरे लिये माँ वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं ।”

वर्षा अभी भी हो रही थी । राजन का सॉवला चेहरा दुःख की छाया से काला लग रहा था । माया स्तब्ध बैठी राजन की कहानी सुन रही थी । आज तक माया ने सोचा था, केवल वह दुःख सहती आई है । यदि किसी को किसी दूसरे की सहानुभूति मिलनी चाहिये तो केवल माया को । परन्तु आज माया ने जाना उसके दुःख कितने क्षुद्र हैं, छोटे हैं, हीन हैं ।

“आप फिर पढे किस प्रकार ?”

माया का स्वर भीगा भीगा था ।

“वैसे जैसे मजदूरों के लड़के पढ सकते हैं । तब श्रमजीवियों के लिए कोई हितकारी सस्थाएं नहीं थी और विदेशियों की हकूमत में हमारे अपने पूजिपति बिल्कुल अन्धे हो रहे थे । किसी तरह पढता रहा । वह एक लम्बी कहानी है । फिर कभी सुनाऊँगा । इस समय आपको और दुःखी न करूँगा । वह मेरे संघर्ष और दलदल से निकलने की कहानी है ।”

“आप मुझे दुःखी नहीं कर रहे । मुझे आपके जीवन की कटुता में अपने जीवन की भाँकी मिल रही है । आप कहते जाइये, सुनने में एक प्रकार का आत्म-सन्तोष ही मिल रहा है ”

“मैंने केवल जीवन में दुःख ही देखा है, अभाव ही देखा है और इसी लिए संघर्ष देखा है।”

“वर्तमान की बात कहिये।”

“वर्तमान में मैं अतीत को भूल जाने का प्रयत्न करता हूँ माया, परन्तु एक क्षण के लिये भी नहीं भुला पाता। अपने जैसे हजारों व्यक्तियों को देखता हूँ तो दिल भर आता है।”

“आप तो अब मिल के मालिक हैं। चाहे तो सुधार भी कर सकते हैं।”

राजन मुस्करा दिया। उसकी मुस्कान में व्यंग्य था।

“आपको किसने कहा मैं मिल का मालिक हूँ? मैं, मैं तो केवल ‘वेलफेयर आफिसर’ हूँ। पिछले दो वर्षों से बहुत सी मिलों का काम एक साथ दे दिया गया है। मैंने नए रूप से काम शुरू किया है।”

माया चुप रही। राजन बोलता गया। राजन ने बतला दिया कि अब उसकी माँ बनारस में रहती है। वह कोई ऐसी बात नहीं करना चाहता जो उन्हें दुःख पहुँचाये। मसूरी में नौवल्टी स्टोर्स उसके जान पहिचान के एक बूढ़े व्यक्ति की है, जिन्हें वह चाचा कहता था। वह दुकान राजन के नाम कर गए हैं। राजन उस दुकान की आय से निर्धन युवकों की शिक्षा पूरी करना चाहता है, जो धनाभाव के कारण प्रायः अश्वरी रह जाती है।

माया राजन की बातें सुनती रही। बातचीत में समय का ज्ञान नहीं रहता। जब माया घर लौटी तो रात के नौ बज चुके थे। उसने राजन से खाने का अनुरोध किया था, परन्तु वह चला गया। उसे कानपुर पहुँचना था। माया को भी दूसरे दिन वम्बई की गाड़ी पकड़नी थी, घर पर तैयारी करनी थी, सामान बाँधना था।

विपिन का जहाज़ बम्बई का तट छोड़ गया। माया के सिर से मानो किसी ने बड़ा सा पत्थर हटा दिया। वह होटल लौटी तो 'बालकनी' पर चम्पा को खड़े देखा। चम्पा ने माया को नहीं देखा। सड़क पर एक बंगाली भिखारिन खड़ी थी, उसके शरीर पर चिथड़े भी पूरे न थे, जिससे वह अपनी लाज बचा पाती। चम्पा उसी को देख रही थी और माया चम्पा को।

माया ने देखा चम्पा का सौन्दर्य निखर आया है। गोरा रंग सिन्दूरी हो उठा है। कपड़े भी बढ़िया और सलीकेदार पहने हैं। माया का हृदय घृणा से भर उठा। परन्तु माया मूर्ख न थी। अपने अनुभव के बल पर यह जानती थी कि वह प्यार से चम्पा को प्रभावित कर सकती है। दो महीने हो गए थे चम्पा और सुधाकर को देहली से भागे हुए।

माया ने सुधाकर के कमरे का नंबर पता किया और सीधी वही चली गई। दरवाज़ा खटखटाया।

चम्पा ने दरवाज़ा खोला साथ ही बोली—“आ गए तुम ?”

माया को देख ठिठक गई ।

“क्षमा करना चम्पा, यह सुधा नहीं, माया है ।”

माया को देख कर चम्पा पर कुछ ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि वह बाहर की ओर भागने लगी । माया ने उसे पकड़ कर पास बिठा लिया ।

“डरती क्यों हो चम्पा, मैं तुम्हें खा न जाऊंगी । आओ इधर बैठो, तुम्हें मिलने आई हूँ, कुछ बातचीत करो ।”

“आप ! आप कैसे आई ?”

माया ने चम्पा के कंधे पर हल्का सा हाथ रख दिया ।

“तुम चिन्ता न करो, मेरे साथ कला नहीं है मैं अकेली हूँ । अपनी भाई को बम्बई छोड़ने आई थी । उसका जहाज अभी अभी छूटा है । मैं यहाँ लौटी तो देखा तुम ‘बालकनी’ पर खड़ी थी ।”

चम्पा ने माया की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया केवल रो पड़ी । माया जितना चुप करवाने का प्रयत्न करती वह और अधिक जोर से रोने लगती ।

माया ने उसे बहुत सॉत्वना दी, प्यार किया । चम्पा को अन्त में आश्वासन हो ही गया कि माया उसकी अपनी है, हितैषी है । चम्पा ने रोते रोते माया को बतलाया वह सुधाकर के साथ भागी, इसकी कोई योजना पहले से तैयार न थी, न ही कोई निश्चय था । कला के आश्रम छोड़ जाने पर अभी तक कोई महिला डाक्टर न आई थी । सुधाकर ही चम्पा का इलाज करने लगा था । दिन में दो बार आता । कभी कभी देर तक बैठा रहता । चम्पा के जीवन की बहुत सी बातें सुनता, सहानुभूति दर्शाता ।

एक दिन एकाएक आकर बोला था—“चम्पा, मेरे साथ चलोगी जहाँ मैं ले जाऊँगा ?” चम्पा ने ‘हाँ’ कह दिया था । वह माया से छिपायेगी नहीं कि वह कोई सहारा चाहती थी । पति ने उसे घर से निकाल दिया था । चम्पा का कोई ठौर ठिकना नहीं था । ढीठ हो चुकी थी । अब जो

कोई भी उसको ले जाना चाहता उसके साथ जाने को तैयार थी। वह सहारा चाहती थी, अवलम्बन चाहती थी। सुधाकर से उसे प्रेम नहीं था। पति के घर से निकालने से प्रेम नाम की चीज उसके हृदय में मर चुकी थी।

गाड़ी में सुधाकर ने उसे बतलाया था कि वह बम्बई जा रही है। चम्पा ने अपने पति से बम्बई का नाम जरूर सुना था, गई तो कभी नहीं थी। सुधाकर पर विश्वास या अविश्वास का कोई प्रश्न ही न उठता था, क्योंकि आजकल चम्पा की दशा ऐसी थी कि जो उसे सहारा देता, वह उसी की हो जाती। चम्पा कोई कपड़ा साथ लेकर न आई थी। सुधाकर ने बम्बई पहुँचते ही उसे साड़ियाँ खरीद दी। पुरानी चम्पा को नया रूप देना चाहता था। चम्पा भी सलवार कुर्ते की जगह साड़ी पहनने लगी थी।

सुधाकर चम्पा को बाहर बहुत कम ले जाता है। उसने चम्पा से खुले शब्दों में कह दिया है कि वह उसे बाहर नहीं ले जाएगा, क्योंकि जिधर से वह गुज़रते हैं लोगों की दृष्टि उसी ओर उठती है।

चम्पा का सौन्दर्य दीप शिखा की तरह जगमगाता था। सुधाकर ने मना कर दिया था कि चम्पा पास पड़ोस के किसी घर में न जाए। चम्पा बोलती गई कि वहाँ कमरे भी इस तरह बनाये गए हैं कि पास पड़ोस का कोई व्यक्ति न आए। किसी को पता भी न चले कि पड़ोस में कौन रहता है, कोई मर रहा है या जी रहा है। यह कहते कहते चम्पा की आँखें फिर भर आईं।

माया ध्यान से सुन रही थी। होटल का बेयरा आकर चाय दे गया था। वह दोनों चाय पीने लगी। चम्पा कहती गई—वह अब भविष्य के लिए कभी नहीं सोचती, भूत में क्या हो चुका है, उसकी चिन्ता भी नहीं करती। केवल वर्तमान के विषय में ही चिन्तित रहती है। उसे जीवन में इतनी ठोकरें मिली हैं कि अब तंग आ चुकी है। भविष्य के विषय में सोचे तो भय से एक धुआँ सा उसके सामने आ जाता है। कई बार वह

सोचती है कि कला बहन को पत्र लिखे। फिर सोचती है, पत्र में क्या लिखे? कला बहन के प्रति जो उसने अपराध किया है, वह पत्र लिख कर क्षमा माँग लेने पर और भी गुरु हो उठता है।

माया ने चम्पा से पूछा कि सुधाकर उसके साथ कैसा व्यवहार करता है।

चम्पा ने माया के प्रश्न का सीधा उत्तर दिए बिना ही कहा—“एक दिन कोई महिला आई थी, पाउडर तथा सुखी से मुह पुता था, बाल अंग्रेजी फैशन के कटे थे। फ्राक पहने थी। वह मुस्करा कर शुद्ध हिन्दी में मुझ से बोली थी—बहन क्षमा करना, मैं आपको जानती नहीं हूँ, परन्तु परिचय प्राप्त करना चाहती हूँ। आपके मित्र शायद बाहर गए हैं। मैं इसीलिए यहाँ आई हूँ।”

और चम्पा ने बतलाया कि मित्र शब्द सुन कर वह कितनी अस्वस्थ हो उठी थी। फिर भी ऐली को यह न कह सकी थी कि तुम कमरे से निकल जाओ। ऐली के बैठे ही सुधाकर आ गया था, उस दिन चम्पा पहली बार ‘डाइनिंग हाल’ में खाना खाने गई थी।

ऐली का आना बढ़ता गया। एक दिन सुधाकर ऐली को लेकर आया, साथ में कागज में लिपटी लिपिस्टिक और कामदार साडी भी थी। सुधाकर ऐली का शराब पिलाने के लिए घर में लाया था। चम्पा ने उस दिन पहली बार शराब का रंग इतने निकट से देखा था।

सुधाकर ने उस दिन चम्पा को भी शराब पीने पर मजबूर किया था। चम्पा ने उसे कह दिया था कि वह कमरे की चहार दीवारी में शराब पीना पसन्द नहीं करेगी, बाहर जाना चाहेगी। खाने के कमरे में सब के सामने पीयेगी। और, उसी दिन से सुधाकर चम्पा को होटल के खानेवाले कमरे में ले जाता और चम्पा वही सब के सामने बैठ कर शराब पीती है।

माया से चम्पा बोली—

“क्या क्या बतलाऊं जीजी, मेरा तो घोर पतन हो गया है।”

इतने में दरवाजा खटका। चम्पा ने भय से माया की ओर देखा और खोल दिया। सुधाकर था। माया को एक क्षण तो उसने पहिचाना ही नहीं, पहिचान गया तो वह भागा। माया पुकारती रह गई। परन्तु सुधाकर भाग गया। जो एक बार गया, फिर लौटा नहीं। रात के दस बजे भी माया ने चम्पा से पूछा, परन्तु सुधाकर नहीं लौटा था।

माया को राजन की एक तार मिली कि वह दूसरे दिन पहुँच रहा है, माया उसकी प्रतीक्षा करे।

दिन भर चम्पा के पास बैठकर माया उसकी व्यथा सुनती रही थी। इस समय एकान्त में वह राजन के विषय में सोचने लगी। मधुकर को वह तीन वर्षों से जानती है। कैलाश को बचपन से। कैलाश कायर निकला और मधुकर? ओह! मधुकर जैसे पुरुष लड़कियों का जीवन बिगाड़ देते हैं। कोई ऐसा सामाजिक कानून होना चाहिए, मधुकर जैसे व्यक्तियों का ब्याह कभी नहीं होना चाहिए। माया तो बाल-बाल बच गई। माया अपना मन टटोलने लगी। उसका हृदय भर आया। उसका अपना कोई नहीं, वह सबकी है। भाई ने एक बार भी नहीं पूछा, 'जीजी, विलायत भेजने के लिए तुमने रुपया कैसे जुटाया।' माँ ने नहीं पूछा, 'माया, यह छाया के लिए इतना ज़ेवर कहाँ से आया।' गाँ ने एक बार यह नहीं कहा, 'छाया ब्याही जा रही है, बारी माया की थी।' पर चलो जैसी परिस्थिति हुई। माँ क्या सोचती है? मेरा कोई अस्तित्व नहीं? मैं शून्य हूँ? मेरी कोई इच्छा अनिच्छा नहीं? छाया अभी अठारह वर्ष की है। मैं चौबीस वर्ष की हूँ। यौवन की अंगड़ाइयाँ लेना, विवाह के मधुर स्वप्न देखना केवल छाया का अधिकार है? मेरा बिल्कुल नहीं? मैं केवल पैसा बनाने की मशीन हूँ? रुपया लगाती जाऊँ और इन लोगो की आवश्यकताये पूरी करती जाऊँ?

कैलाश और मधुकर के अनुभव इतने कटु थे कि माया की आँखों से आँसू बहने लगे। सारा तकिया भीग गया। बम्बई जैसे शहर में माया

पहली बार आई है। घूम फिर कर अभी उसने कुछ नहीं देखा। कल राजन आ रहा है। राजन ! माया का हृदय धड़कने लगा। उसके मन में आशंका भी थी। चाहे वह अनुभव करती है कि राजन को देख उसका शरीर रोमांचित हो जाता है फिर भी आशंका उसके जीवन का अंग बन गई है।

: २ :

‘गेटवे आफ इंडिया’ के पास समुद्र के टुकड़े में हजारों बिजलियाँ झिलमिल रही थी। आकाश में चाँद मुस्करा रहा था। नाव में राजन और माया बैठे थे, मल्लाह नाव खे रहा था।

अपने तार के अनुसार राजन बम्बई पहुँच गया है। माया वाले होटल में ही ठहरा है। पहुँचते ही माया उसे कमरे में मिली।

“मैं आया हूँ, आपको एतराज तो नहीं है ?” राजन ने पूछा था और माया लाल हो उठी थी।

“नहीं, आप ने अच्छा किया। मैंने बम्बई का एक कोना भी नहीं देखा, अब घूम फिर कर देखूँगी।”

राजन खिलखिला दिया।

“मैं इसीलिए तो आया हूँ, क्यों ? यहाँ गाइड बहुत मिल जाते हैं।”

माया एक क्षण चुप रह कर बोली—

“नहीं, आप कुछ दूसरा समझ रहे हैं। मेरा यह मतलब न था। मैं केवल यह कहना चाहूँ।”

राजन फिर खिलखिला दिया।

माया के सामने खड़ा हो गया।

“मैं देखने आया हूँ, एक मजदूर की आवभगत आप कितनी करती है। उतनी ही जितनी एक मिल मालिक की।”

माया को राजन की बात पर क्रोध नहीं आया। कोई और ऐसी बात कहता तो वह झुझला जाती। वह हँसकर बोली।

“आप मिल मंगलिक होते तो शायद बिल्कुल स्वागत न होता।”

उस दिन राजन ने माया को क्राफोर्ड मार्केट, मैरीन ड्राइव, जुहू-बीच, और हैन्गिंग गार्डन घूम-घूमकर दिखलाये। हार्नबी रोड की एक बड़ी सी दूकान पर दो तीन साड़ियाँ भी ले दी।

एक बड़ी सी आभूषणों की दूकान देखकर माया का मन ललचा। पर उसने अपने पर नियंत्रण रखना ही उचित समझा। राजन ने पहले ही उसे बहुत सी वस्तुएँ खरीद दी हैं। वह कोई सेठ धनपति तो है नहीं, जो खरीदता जाएगा और पैसे की चिन्ता करने की उसे आवश्यकता नहीं।

माया राजन की मैत्री या सद्भावना चाहती है तो उसे कम से कम खर्च करवाना चाहिए। माया ग्लानि से भर उठी।

शाम को राजन उसे एक फोटो स्टुडियो में ले गया और माया की तस्वीर खिचवाई। फिर अपनी, और फिर दोनों ने एक साथ भी उतर-वाई। इकट्ठी तस्वीर में माया की पलकें लाज से झुकती जा रही थी।

रात्रि का भोजन साथ लेकर दोनों नाव में बैठे थे। शीतल समीर समुद्र के वक्ष पर नृत्य कर रही थी। माया के बाल हवा में उड़-उड़ जाते। दिन भर घूमने से उसका जूड़ा ढीला हो रहा था। राजन बीच-बीच में मल्लाह से नाव की डांड ले लेता और खेने लग जाता।

ठंडी समीर से उत्पन्न होकर राजन गाने लगा। माया को स्वप्न में भी विचार नहीं था कि राजन गा सकता है। राजन की आवाज़ भारी और मधुर थी। गला मजा हुआ था, शायद वह पहले भी गाता रहा है।

माया को यह देख खुशी हुई कि राजन ने उससे गाने के लिए नहीं कहा। वह समझता है कि माया गाना बाना नहीं जानती। यदि माया को गाना आता होता तो वह कब का शुरू कर देती। माया के मन में एक बार आया, काश ! वह भी गा सकती।

माया ने देखा दूर दूर नावों में ग्रामोफोन बज रहे हैं। किसी किसी नाव में माँझी गा रहे हैं। चारों ओर प्रसन्नता का वातावरण छाया है।

माया भी उस समय अपना दुःख दर्द भूल कर तन्मय हो गई। राजन हँस रहा था। बात बात पर खिलखिला उठता था। उसने माया पर कोई व्यंग नहीं किया। किसी प्रकार का ताना आदि नहीं दिया। इतनी देर में सेठ धनपति कई तरह के सवाल करते—यह करना है, वहाँ जाना है। राजन ने उसके अतीत की बात कर रहा है न भविष्य की। वह ऐसा कुछ भी नहीं कह रहा जो माया को अच्छा न लगता, या जिससे माया को प्रसन्नता न होती। माया आत्म-विभोर हो उठी। उसे लगा, यह उसके जीवन का सुप्रभात है।

साधारणतः लड़के एक लड़की को दूसरी या तीसरी बार मिलते हैं तो कहने लग जाते हैं—मैं तुम्हें चाहता हूँ। तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो। राजन ने ऐसा कुछ भी नहीं कहा। माया ने किताब तो पढ़ी नहीं, परन्तु फिल्मों में तो बहुत सी देखी हैं, और फिल्मों में प्रायः ऐसा होता है। फिल्म के नायक ही नायिका को अपनी उदारता से चकाचौंध कर देते हैं। मधुकर और कैलाश तो वास्तविक नायक थे। माया का मस्तिष्क अधिक कल्पनाशील नहीं, चाहे, वह परिस्थिति की गुरुता, लघुता बखूबी समझ जाती है और उसका कर्मशील मस्तिष्क उसे काम करने में सहायता देता है।

राजन गाता गाता रुक गया—“माया मुझे टैगोर के उपन्यास का एक दृश्य याद आ गया है। भूल रहा हूँ कौन सी पुस्तक है, क्या तुम्हें याद है ?”

टैगोर का नाम माया ने मधुकर से सुना था। वह कवि है, यह भी उसने सुना था, मधुकर के घर में टैगोर की तस्वीर भी लगी थी।

माया ने धीरे से उत्तर दिया—“मेने टैगोर की कोई पुस्तक नहीं पढ़ी।”

“सच ?”

“हाँ, मुझे जीवन में कभी पढ़ने का अवसर ही नहीं मिला। पढ़ना ‘अरिस्टोक्रेसी’ है।”

राजन बड़े मीठे स्वर से बोला—“फुरसत पाने पर टैगोर की सब पुस्तकें पढ़ डालना। शरत, प्रेमचन्द भी पढ़ना। पढ़ना प्रकाश है माया, मैं चाहता हूँ तुम इस से वंचित न रहो।”

“अच्छा”। माया का स्वर धीमा था।

“तुमने टैगोर नहीं पढ़ा, परन्तु जीवन तो पढ़ा है। जीवन का पढ़ना ही सबसे बड़ी शिक्षा है।” राजन ने माया के कानों में फुसफुसाते हुए कहा।

साढ़े ग्यारह बज रहे थे, दोनों होटल लौट आए। होटल पहुँच कर माया को सुधाकर का ख्याल आया। अब बहुत देर हो चुकी थी। वह अपने कमरे में सोने के लिए चली गई।

आज का दिन उसके जीवन के सब दिनों से सुहावना था, सुन्दर था। क्या ऐसे और दिन उसके जीवन में आएंगे? वह भविष्य की चिन्ता करती करती सो गई। रात भर वह राजन के स्वप्न देखती रही। पहली बार उसने जीवन में ऐसे मधुर स्वप्न देखे थे। जीवन की विषमताओं ने उसे ठोंक पीट कर कर्मशील बना दिया था।

दूसरे दिन सुबह उठी तो उसे सुबह रंगीन लगी। पहली बार उसने प्रातः उठ कर अनुभव किया, जैसे सब सुखद है, सुन्दर है।

माया को आज ही रात को बम्बई से देहली चले जाना है। वह ‘बाथरूम’ से बुश करके निकली, मुँह हाथ धोया ही था कि राजन उसके कमरे में आ गया।

“माया, तैयार हो जाओ। तुम्हें आज बम्बई की मजदूरों वाली बस्ती में ले चलूंगा; वैसे तो यहाँ बहुत सुधार हो चुके हैं, यहाँ की मिलों का कोना कोना मेरा पहचाना हुआ है।”

“यह आज्ञा एक दम ! एक बार पूछ ही लिया होता, मेरी इच्छा क्या है ? मैं कही जाना चाहती हूँ कि नहीं ?”

फिर भी माया तैयार हो गई।

आज राजन ने खादी का कुर्ता और पायजामा पहना था। माया के पास एक श्वेत जार्जेट की साड़ी थी, उसने वही पहन ली। पाँव में ‘सेडल’ नहीं, केवल चप्पल। आज उसने लिपस्टिक आदि का प्रयोग नहीं किया।

राजन ने एक टैक्सी ले ली।

माया बोली—“आज रात मुझे अवश्य चले जाना है। यदि न गई तो नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा।”

राजन हँस दिया।

“हाँ, आज रात को चली जाना, मैं कौन कहता हूँ रुक जाओ। सुनो माया, हो सकता है, तुम्हारा मन कही और जाने को करता हो, मैं जबरदस्ती तुम्हें वहाँ मजदूरों की बस्ती में ले जा रहा हूँ।”

माया का जी चाहा ऊँचे ऊँचे से रो दे। राजन भी उसे नीच समझता है। राजन भी यह सोचता है कि वह कृत्रिम जीवन में अधिक विश्वास रखती है। सिनेमा, क्लब, पार्टियाँ, ऐसे स्थानों पर जाने की ही उसकी इच्छा है। वह मजदूरों की बस्ती में नहीं जाना चाहती। जैसे उसे एतराज हो। माया ने बहुत चाहा वह न रोये। परन्तु उसकी रुलाई छूट गई। वह इतना रोई जितना वह जीवन में कभी न रोई थी। राजन किर्कटव्यविमूढ़ उसके पास बैठा था। टैक्सी चलती जा रही थी। मजदूरों की बस्ती दूर रह गई थी। राजन ने माया को समझाना चाहा। माया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

दोनों होटल लौट आए।

राजन माया को उसके कमरे में ले आया। माया फूट फूट कर रोई। राजन पास बैठा रहा। उसे मसूरी की वह रात याद हो आई जब उसने माया को कमरे में पहुँचाया था। वही उसका प्रथम परिचय था। माया को कॉफी बहुत पसन्द है। राजन ने बेयरा को बुलाकर कॉफी लाने के लिए कहा।

बेयरा कॉफी लाने गया, तो राजन बोला—“उठो न, जाओ, मुँह धो डालो। मेरी बात का इतना बुरा मान गयी। सच मानो माया, मुझे किसी लड़की से बात करना आता ही नहीं है। मुझे यह पता नहीं था, कैसे बात आरम्भ करूँ। तुम मुझे क्षमा न करोगी, माया?”

माया पलंग से उठती बोली—“नहीं, दोष मेरा है, जो एक दम में रो दी। आपने तो मेरी भलाई की बात कही थी।”

राजन मुस्करा दिया।

“फिर तुम रोई क्यों?”

“सच बताऊँ?”

“हाँ माया मैं सच ही सुनूँगा।”

“अगर मैं झूठ बोल गई तो?”

“तो क्या, परन्तु मैं जानता हूँ, सेठ धनपति की फर्म चलाने वाली माया कभी किसी के सामने रोई नहीं है। वह केवल आज रोई है, मेरे सामने। क्यों? सच कह रहा हूँ न?”

“हाँ,” माया ने बड़ी बड़ी आँखें ऊपर उठाते हुए हाँ हाँ। रो रो कर माया की आँखें सूज गई थीं।

“माया”। राजन ने माया का हाथ पकड़ते हुए कहा—“क्या मैं इतनी धृष्टता कर सकता हूँ?”

माया जो आज तक अपने को नितान्त अकेली समझती थी, उसने एक दम अनुभव किया वह अकेली नहीं है। संसार में उसका कोई और भी है। केवल लोग उस पर निर्भर ही नहीं है। वह भी किसी पर

निर्भर हो सकती है।

माया हाथ छुड़ा कर गुसलखाने में भाग गई।

राजन वही कुरसी पर बैठ गया। उसने अनुभव किया जैसे उसके जीवन में कुछ नया हुआ है, जैसे एकाएक उसने कोई बहुत बड़ा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया है।

माया बाहर निकली तो लाज से जकड़ी जा रही थी।

“क्यों माया ? ऐसी भी क्या बात है ?”

“कुछ भी नहीं।”

“तुम बोलती नहीं।”

“आप मुझे अवसर ही कब देते हैं ?”

कॉफी आ गई थी। राजन कॉफी बनाने लगा।

“कहती क्यों नहीं, कि तुम बना दोगी।”

“आप जो बना रहे हैं।”

“सुनो। तुम्हारा जो सबसे प्रिय विषय है तुम उसी पर बात छोड़ो, मैं भी भाग ले सकूँगा।”

माया कुछ क्षण चुप हो गई। उसे विचार आया, कहीं राजन एका-एक नाराज न हो जाए। वह इतना भुक्ता गया है। फिर बोली, “मेरा प्रिय विषय केवल अभी तक यही रहा है कि मैं अमीर से अमीर आदमी को कैसे उसके धन से वंचित कर सकती हूँ, जिसमें मेरा, मेरे घरवालों का तथा और कई हमारे जैसे व्यक्तियों का भी भाग है। जीवन की आवश्यकताओं को जिस समय, मैं या मेरी माँ, पूरा न कर सकते थे, तो उस समय हम अपने वातावरण पर क्रोध आता था, अपने पर क्रोध आता था।” एकाएक माया की आँखों में पानी छलछला आया।

“यह तो मेरा भी प्रिय विषय रहा है।” राजन ने कॉफी पीते हुए कहा।

“उन सभी का हो सकता है, जिन्होंने जीवन में केवल अभाव ही अभाव देखा है।”

“आजकल तो तुम्हारी स्थिति अच्छी है माया ।”

माया का मन फिर भर आया, परन्तु उसने अपने आँसुओं पर नियन्त्रण रखा । अब वह नहीं रोयेगी ।

“मेरी स्थिति कुछ अच्छी हो तो भी क्या ? मेरी हजारों बहिनों का क्या हाल है ? आप जानते हैं ? बेचारी आर्थिक परिस्थितियों से तंग आकर काम करने घर से निकलती है, परन्तु दफ्तरों में उन्हें क्या क्या देखना पड़ता है, क्या क्या सहना पड़ता है, इसका अनुमान आप नहीं लगा सकते ।”

राजन ने कॉफी का एक और प्याला बना लिया । एक घूट पीता हुआ बोला—“हाँ, तुम ठीक कहती हो । आजकल कार्य कुशलता का सबसे बड़ा मापदण्ड तो यही है कि आप कितनी शराब अपने अफसरों को पिला सकते हैं । जितनी पिला सके या उनकी खुशामद कर सके उतनी ही आपकी उन्नति होती है । परन्तु स्त्रियों के लिए भी ऐसा होता है यह मैं न जानता था ।”

माया का मुख तिलमिला गया । वह बोली—“रमा के अफसर ने तो उसे तरक्की दी, एक सौ दस से एक सौ पच्चास कर दिए, चालीस रुपये एकदम । उसके फलस्वरूप जानते हो क्या दिया ? जन्म भर के लिए अभिशाप, उस बेचारी का ब्याह भी तो न हो सकेगा ।”

राजन का मुख भी क्रोध से लाल हो उठा । वह बड़े संयत स्वर से बोला—“मैं देहली में तुम्हारी इन सब सखियों से मिलना चाहूँगा माया ।”

“क्यों, किस लिए ? उन्हें नीच अथवा हीन दिखलाने के लिए ?”

“नहीं, तुम हमेशा ग़लत समझती हो माया । मैं भी यदि उनकी कोई सहायता कर सकूँ, रमा के लिए कोई लड़का ढूँढ सकूँ तो तुम्हारा कुछ भार हल्का हो जाएगा । अच्छा, अब तुम आराम करो । मैं अपने काम पर जाता हूँ । शाम तक लौटूँगा ।”

माया ने राजन को रोकना चाहा, वह मुख से कुछ बोली नहीं ।

केवल उसने अपनी बड़ी बड़ी आँखें उठा दी। राजन क्षण भर उसकी ओर देखता रहा, फिर धीरे से बोला—“मुझे लगता है, चाहती हो मैं यहाँ ठहरूँ, परन्तु कर्त्तव्य है इसलिए जाता हूँ।”

माया ने केवल सिर हिला दिया।

राजन चला गया। माया को लगा जैसे सब अन्धकार ही अन्धकार में छिप गया है। वह निर्बल होकर बिस्तर पर लेट गई। राजन के स्वप्नों में डूब गई। वह कमजोरी अनुभव कर रही थी।

: ३ :

माया बम्बई से लौटी तो वहाँ से साठ हजार का बिजनेस भी लेकर आई। सेठ धनपति नाराज थे। मन ही मन माया से रुष्ट भी थे कि दो दिन के लिए गई और एक सप्ताह लगा कर आई थी। देहली पहुँचते ही उसने जब बिजनेस के कागज सेठ धनपति के सामने रखे तो प्रसन्नता से वह विह्वल हो उठे। बोले—

“माया, तू तो इस विज्ञापन फ़र्म को बिल्कुल अपना ही समझती है।”

माया ने उत्साह से सेठ साहब की ओर देखा और आँखों में शरारत भर कर पूछा—“क्यों, क्या यह मेरी नहीं है?”

“फ़र्म ही नहीं, मैं भी तुम्हारा हूँ। तुम्हारी वजह से इसकी इतनी उन्नति हो रही है। मैं सोचता हूँ, इस बम्बई वाले बिजनेस का आधा कमीशन तुम्हें मिलना चाहिए।”

माया ने पूरी तरह से मुस्करा कर सेठ साहब को देखा।

“आपकी कृपा है मुझ पर, वही बनी रहने दीजिए।”

“नहीं माया, तुम मुझे लज्जित करती रहती हो। मैं भला इस योग्य कहाँ हूँ, जो तुम पर कृपा रखूँ। तुम मुझ पर कृपा रखो, इस फ़र्म पर कृपा रखो।”

माया मुस्कराती रही, फिर धीरे से खिड़की खोलती हुई बोली--
 “आप मुझे मुनाफ़े का कुछ प्रतिशत भाग देना चाहें तो मैं ‘न’ कैसे कर सकती हूँ। फिर मुझे आपका ऋण भी तो चुकाना है, यदि मैं पैसा जमा न कर पाऊँगी तो दूगी कहाँ से ?”

सेठ धनपति कुछ देर सोचते रहे, फिर धीमे स्वर से बोले, “तुम ऋण की चिन्ता क्यों करती हो ? जब चाहोगी, चुका दोगी। और फिर तुम्हारा और मेरा धन कोई दो है ? सच मानो माया, मैंने कभी तुम्हारे मे और अपने में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखा। आज तक तुम्हें बिल्कुल अपना समझता आया हूँ।”

माया इस बातचीत को अब आगे नहीं बढ़ने देना चाहती थी। वह अपने अनुभव से सीख गई है, कि इन मीठी मीठी बातों में भरमा कर ही धीरे धीरे बात आगे बढ़ती है और फिर सेठ साहब के मुह में पानी भर आता है। माया आज तक तो अपने को बचा पाई है। अब बचाना तभी सम्भव हो सकेगा यदि वह अधिक से अधिक बिज़नेस लाएगी। सेठ साहब का मन बिज़नेस में उलझाये रखेगी।

“आज शाम की चाय तुम मेरे साथ पीओ माया।”

“खुशी से। आप मेरे लिए इतना करते हैं, तो क्या मैं यह भी न कर सकूँगी।”

“पहाड़ जाने का प्रोग्राम कब बनाया जाय ?”

“अब पहाड़ नहीं, कलकत्ता चलेंगे, बिज़नेस भी लायेंगे।”

सेठ साहब के मन का लालच चेहरे पर भी उभर आया। उन्होंने माया का हाथ पकड़ कर कहा—“तुम कितनी अच्छी हो माया ! एक मैं हूँ, मुझे निजी खुशी के सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं। तुम हो, तुम सिवाय फ़र्म के सुधार के और कुछ नहीं सोचती हो। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ।”

माया ने सुअवसर देख कर सेठ साहब से आधी कमीशन लिखवा ली। शाम को उनके साथ चाय पीने का वायदा कर माया ने मेजर

कबाड को टेलीफ़ोन किया। वह माया के घर मिलने आया तो देखा वह कुर्सी पर बैठी थी। माया प्रायः घर पर रहती तो पलंग पर लेट जाती, बैठती बहुत कम। उसे बैठे देख कबाड को लगा, माया के मन में कोई योजना काम कर रही है।

“कहो, हो गई बम्बई की सैर ?”

“हाँ, हो गई। ज्योत्स्ना से भी मिलने गई थी।”

कबाड के मुख का घाव घृणित हो उठा। वह चुप हो गया। उसकी चुप्पी से एकाएक माया को विचार आया, ज्योत्स्ना ही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। कबाड उसके विषय में कभी बात नहीं करना चाहता।

“अरे ! तुम चुप क्यों हो गए ? मैं हीरा वजीफ़दार से भी मिली हूँ, तुम्हारी मंगेतर, जिसे तुमने बतलाया भी नहीं था कि ज्योत्स्ना का भी कोई अस्तित्व है। कबाड, बम्बई में तुम्हारा रूप पूरी तरह पता चला, तुम क्या क्या हो।”

“माया, तुम्हें मैं समझदार मानता आया हूँ, परन्तु आज की बात को लेकर लगता है मुझे अपनी धारणा बदलनी पड़ेगी।”

“नहीं कबाड, मैं तुम्हें अच्छी तरह पहिचानती हूँ, तुम्हें घबराने की आवश्यकता नहीं।”

“मैं भूल गया। तुम्हें मसूरी में क्या हुआ था, जो तुम एकाएक लौट आई ?”

“कुछ नहीं, तबीयत ठीक नहीं थी।”

“मुझसे मिलकर तो आती।”

“तुम अनीता में व्यस्त थे।”

कबाड खिलखिला दिया और बोला “यह क्यों नहीं कहती कि तुम मुझ से छिप कर भागी थी, मानो मैं मनुष्य नहीं, राक्षस हूँ।”

“तुम से डरने का मुझे क्या कारण हो सकता है ? जो ज्ञात है, वह सामने है, जो अज्ञात है, उससे भय किया जा सकता है। फिर तुममें इतनी हिम्मत तो हो नहीं सकती कि मेरी मर्जी के खिलाफ़ तुम मुझ

से कुछ कहते सुनते ।

“अनीता से ईर्ष्या हो गई थी ?”

“मुझे !” माया के स्वर में अचम्भा था तथा तिरस्कार था ।

“क्यों ? तुम ईर्ष्या से दूर हो ?”

एकाएक जैसे माया के मन में बिजली कौंध गई हो । राजन यदि अनीता में दिलचस्पी रखता ? क्या वह ऐसा कर सकता है ? नहीं नहीं । यह दो दिन जो उसने राजन के साथ बम्बई में बिताये हैं, इन दो दिनों में राजन ने और उसने क्या क्या नहीं एक दूसरे के विषय में जान लिया । माया सभी कुछ बता चुकी है । केवल तीन हजार पाँड वाली बात वह नहीं कह सकी । मानो वह बहुत बड़ा भार है, जिसे वह राजन पर लादना नहीं चाहती । उसने मधुकर के विषय में भी बतलाया, कबाड के विषय में भी । जाने क्यों नारी जब अपना भेद खोलने लगती है, तो सब बतला देती है, कुछ भी तो छिपा कर नहीं रखती ।

अब वह मन ही मन समझती है कि वह मसूरी से कबाड को बिना मिले ही क्यों आ गई थी । माया ने राजन से सब सच कहा था । कैलाश वाली बात भी राजन सुन कर मुस्करा दिया था । उसने, सभ्यता के नाते ही सही, एक बार भी तो माया से नहीं कहा—‘तुम इतनी काली और कुरूप नहीं हो माया, यह तुम्हारा भ्रम है ।’ माया को उस से दुःख तो हुआ था, परन्तु वह सब कुछ भूल गई जब राजन ने अपने जीवन की भी वैसी ही कथा सुना दी कि कैसे एक मिल मालिक की तीसरी पत्नी राजन पर इतनी कृपालु थी कि वह उसे अपना ‘प्राइवेट सेक्रेटरी’ बनाना चाहती थी । जब राजन ने देखा बात बहुत बढ़ती जा रही है, तो उसने सेठ साहब को छुट्टी की अर्जी दे दी थी, कि वह अपने गाँव अपनी पत्नी और बच्चों को लाने जाना चाहता है । माया यह सुन खूब हँसी थी । राजन भी खिलखिला उठा था ।

इसी समय माया के मुख पर हल्की सी मुस्कान खेल गई ।

कबाड बोला—“क्या सोच कर मुस्करा रही हो ?”

“कुछ नहीं ।”

“बिन्दया कहाँ है ? क्या उसका दूसरा ब्याह हो गया ?”

“हाँ, हो गया । बिन्दया को बुलाऊँ ? तुम्हे चाय तो चाहिये ही ?”

“नहीं, रहने दो । आज तुम्हें ‘वैगर्स’ में मैं चाय पिलाऊँ ।”

माया मुस्करा दी ।

“अच्छा, तुम छः बजे वहाँ पहुँच जाना ।”

कबाड ‘हो-हो’ कर के हँस दिया । बोला—

“तुम्हारा क्या मतलब है, मैं इस समय कूच कर जाऊँ ?”

“हाँ अभी तो छः बजने में तीन घण्टे का समय है ।”

“वह नहीं मिला तुम्हें, तुम्हारे कवि का डाक्टर भाई. जिसकी शादी तुमने एक सुन्दर लड़की से करवा दी थी ?”

माया मौन रही ।

कबाड ने माया के मुख की ओर देखते हुए कहा—“आज चिन्तित हो माया ?”

माया बोली—“वह बम्बई के उसी होटल में ठहरा था, जिसमे मैं रही थी । मैं सोचती हूँ अपनी एक सभा होनी चाहिए । उस सभा में केवल वही लड़कियाँ या महिलायें उपस्थित रहें जो दफ्तरों में काम करती हैं और जिनको दफ्तर में एक न एक मुसीबत का सामना करना पड़ता है ।”

“क्यों, आज कल तुम्हारे पर कौन सी मुसीबत है ?”

“मुझ पर न सही, बहुत सी ऐसी लड़कियाँ हैं जिन पर आए दिन मुसीबत आती रहती है । रमा को तुम जानते हो न ? रमा जैसी और भी तो कितनी लड़कियाँ हैं ।”

कबाड को दुःख भरी बात, तर्क से सम्बन्धित बात सदैव बुरी लगती है । उसके मन में एक उथल-पुथल मच जाती है । कि वह कही कर्तव्य से चूक रहा है । शायद यही उसकी मानसिक ग्रन्थि का रहस्य है । माया, एकाएक, दफ्तर में काम करने वाली महिलाओं की ओर

आकृष्ट हो उठी। क्यों ? नहीं, कबाड गलती कर रहा है।

वह तो सदैव ही ऐसी रही है।

माया के मन में मधुकर प्रति जो क्रोध था, वह अभी तक ज्यों का त्यों बना था। उसने उसे वेश्या कहा था, क्योंकि माया सच बोली थी। माया ने उसे छेड़ा था, क्योंकि वह मधुकर की मानसिक संकीर्णता से तंग आ चुकी थी। परन्तु उसने उसे वेश्या कहा। उसका बदला कैसे लेगी ?

कबाड कुरसी से उठकर दरवाजे के पास आ गया। उसने दरवाजा खोला तो देखा बाहर वर्षा हो रही थी। बरसात का अन्त हो गया था, पंखे भी बन्द होने लगे थे। इस असमय में वर्षा

“क्यों, तुमने मुझे फोन किसलिए किया था ?”

“मिलने के लिये।”

“मुझे भी भुलावा देना चाहती हो ?”

“नहीं, तुम्हें क्या भुलावा दूंगी। तुम मुझको भले ही दे जाओ, खैर, बहस नहीं करूंगी। मैं एक काम तुम से करवाना चाहती हूँ, बोलो क्या लोगे ?”

“वह तो काम सुन कर बताऊंगा। जैसा काम वैसा दाम।”

“सुनो, मैं दर्जी की दुकान खोलना चाहती हूँ, जिस में सिर्फ तुम्हारे सैनिकों के लिए काड़े सीधे जाएंगे। बतजाओ, कुछ सहायता कर सकते हो कि नहीं ?”

कबाड के जबड़े फैल गए, वह मुस्करा दिया।

“अब समझा हूँ, तुमने मुझे किसलिए बुलाया था। काम बुरा नहीं। दुकान का इन्तजाम कर लिया ?”

“दुकान का प्रबन्ध तुम करोगे। काम के प्रबन्ध के लिए तो मैं कर्नल सिंह के पास जाऊंगी।”

“तुम इतना पैसा क्या करोगी ?”

“मेरा भाई विलायत गया है पढ़ने, नहीं जानते ?”

कबाड घृणित रूप से मुस्कराया। “जानता क्यों नहीं हूँ, परन्तु यह सेठ धनपति किस मरज की दवा है?”

“वह क्या कर लेगे, बेचारे।”

“तो तुम उनके इशारों पर बिना कुछ लिये नाचती हो?”

“तुमने मुझे क्या समझा है?”

माया का मुख क्रोध से लाल हो उठा। कबाड ने सिगरेट जला ली।

“मैं तुम्हें एक समझदार और चतुर लड़की समझता हूँ, और क्या?”

“तुम बात पलट गए हो। खैर, मैं तुम से भगड़ूनी नहीं। तुम्हें मैं अपना मित्र समझती हूँ, चाहे तुम नारी के प्रति इतने कृतघ्न रहे हो।”

“आज माया तुम बड़ी खराब ‘मूड’ में हो। मैं चलता हूँ। दुकान का प्रबन्ध मैं कर दूंगा। पर यह अपने बूढ़े मुर्गों से भी कुछ ऐंठो न। सच, मैं तुम्हारी जगह होता तो कोई ज़मीन जायदाद, अपने नाम अवश्य करवा लेता।”

“धन्यवाद, सलाह तुम्हारी नेक है। उस पर मैं गौर करने का प्रयत्न करूँगी। देखो दुकान का काम मैं इस अक्तूबर की पहली तारीख से आरम्भ करने वाली हूँ। इससे अधिक देर नहीं होनी चाहिए।”

“हाँ, हाँ, पहली अभी दूर है। मैं तुम्हें उससे पहले ही प्रबन्ध कर दूंगा।”

कबाड चला गया। माया सोच में डूब गयी। यह कबाड भी उसे नीच समझता है। न जाने क्यों पुरुष का विश्वास नारी की पवित्रता पर टिक नहीं पाता यदि उसे पता हो कि अमुक नारी किसी अन्य पुरुष के सम्पर्क में आती है। जीवन की विषमताओं को सुलझाने के लिए आज नारी को क्या नहीं करना पड़ता। देखा देखी भूटे आडम्बर तथा नई चाल के प्रचलन में आकर पुरुष ने नारी को स्वतंत्रता तो दी है, परन्तु उसे उस पर विश्वास नहीं आया।

मधुकर की भावुकता माया को पसन्द थी। परन्तु उसकी मर्यादा की भावना को माया लेकर क्या करे ? कहाँ तक निबाहे ? वह उसके काम कैसे आ सकती है। माया को अपनी माँ के लिए खर्चा भेजना पड़ता है। बैंक में कुछ जमा करवाना पड़ता है। अपना खर्च, सफ़ेद-पोशी को बनाये रखने के लिए साड़ियों का खर्च, बिन्दिया का वेतन, होस्टल का किराया, और कला की भेंट दी हुई मोटर, सभी वस्तुओं पर पैसा लगता है। उसे पैसा चाहिए। माया प्रायः सेठ साहब की कार में आती। अपनी कार को व्यवहार में लाने का अवसर ही नहीं मिला था। उसे वह 'गैरेज' में ही बन्द रखती।

जब वह चाय के लिए तैयार होने को उठी तो उसका मन गहरी चिन्ताओं से मुक्त था। आज संध्या को वह अपने बचाव की योजना बना चुकी थी। एक घण्टा वह सेठ साहब के साथ अकेली बैठेगी तो कबाड आ जाएगा।

छोः, कबाड भी कितना घृणित है। माया को अपने जैसा समझता है। कैलाश से मधुकर और मधुकर से राजन। कैलाश माया से मिलने के लिए उत्सुकता दिखाता था, मधुकर भी। कैलाश को पिता का भय था, परन्तु मधुकर का मन उसके वश में न था। राजन... यह देखें क्या करता है। इन सबमें से कैलाश ही केवल, ऐसा था, जो माया को सान्त्वना दिया करता था—'तुम सुन्दर हो, कुरूप नहीं हो।'

उस रात को माया लौटी तो रात के ग्यारह बज रहे थे, बिन्दिया कमरे में वैठी प्रतीक्षा कर रही थी।

पिछली ओर से किवाड़ को वह ताला लगाती और सामने वाली ओर से माया स्वयं लगा जाती।

माया को आश्चर्य हुआ। आज तक बिन्दिया कभी इतनी देर तक न बैठी थी।

“क्यों क्या बात है बिन्दिया ?”

“बीबी जी, आपके आने की राह देख रही थी।”

“आखिर क्यों ?”

“यह ‘मेट’ से लड़ाई हो गई है।”

“क्यों ?”

“कहता था, तुमने अपना आदमी भगा दिया, मुझ रंडुए से घर बसाया, अब मुझे भी आँखें दिखा रही हो।”

“क्यों ? पूरी बात तो कहो।” माया मन ही मन भुंभुला रही थी।

“बीबी रानी, मंगरू चमार की बहुरिया को देख यह गाने लगा था। मैंने कुछ सुना दिया तो बोला मुझे भी अपने जैसा समझती है ? तू तो अपनी मालकिन को देख कर रंग पकड़ती है। अपना पति भगा दिया है और चाहती है मैं भी छोड़ जाऊं ? मैं नहीं जाने का, कहे देता हूँ।”

बिन्दिया रौने लगी।

“बीबी रानी, मैंने उसे कह दिया—नासपीटे, मेरी मालकिन के विषय में कुछ कहा, तो तेरी जबान खींच लूगी। इसीलिए हमारी लड़ाई भी हो गई।”

माया के मुख पर मानो किसी ने स्याही पोत दी हो। उसका मुख मलिन हो गया। माया ने बिन्दिया की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। बाहर गुलाबी जाड़ा था। माया कोई गरम कपड़ा साथ लेकर न गई थी। उसके गले में जैसे कुछ फंसा हुआ था, सिर में हल्का दर्द था। माया ने कपड़े बदले और आकर लेट गई।

“बिन्दिया, तू सोने नहीं जायगी ?”

“नहीं बीबी जी, मैं यही आपके पास धरती पर सो जाती हूँ।”

“धरती पर क्यों ? उस तख्तपोश पर सो न।”

बिन्दिया सोने से पहले, जो मन में आता गया, पुरुषों के विषय में कहती रही। ऐसे होते हैं, वैसे होते हैं। ‘मेट’ को ही देखो न बीबी जी,

इसकी कितनी मित्रता के बाद मैं इसके घर बैठी हूँ, तिस पर भी इसका मिजाज इतना है। मुझे तो जैसे कुछ समझता ही नहीं।

माया ने समझा जैसे उसके मन के कोने में घाव है, जो उसे कुरेदता जा रहा है, जो गहरा होता जा रहा है। माया का क्या दोष है? वह स्वयं कमाती है जिसे यह लोग पसन्द नहीं करते। एक नौकर की इतनी हैसियत है कि वह माया की खिल्ली उड़ाये! माया मन ही मन सुलगती रही।

: ४ :

नवम्बर का अन्त था। जाड़ा काफ़ी पड़ने लगा था। माया दो दिन के लिए अलीगढ़ गई थी। कला ने पत्र लिख कर बुलाया था। कला माया से मिल कर बहुत रोई थी। सुधाकर के विषय में पूछ रही थी। बोली थी, “कैसे है? एक पत्र नहीं, एक बार मिलने भी तो नहीं आए।”

माया ने उत्तर दिया था—“सुधा एक परीक्षा देने बम्बई गया है। व्यस्त होने से नहीं आ पाया। तुम घबराओ नहीं।”

कला को सुधाकर के प्रेम में अटूट विश्वास था। वह कल्पना भी न कर सकती थी कि सुधाकर चम्पा को लेकर भाग गया है। उसे किसी ने बतलाया भी न था। ऐलिस अभी तक अलीगढ़ में ही थी, वह कला के प्रसव हो जाने के बाद जाएगी। प्रसव में कुछ दिन ही शेष रह गए थे। वह कला का मन बहलाने में सफल हुई थी।

माया का मन क्षुब्ध था। वह चिड़चिड़ी सी रहती थी। कारण वह स्वयं भी समझ न पाती। आखिर वह अपने से ही इस तरह रुष्ट क्यों है? वह क्या चाहती है? माया ने सैनिक ‘मैस’ में दर्जी की एक दुकान खोल ली थी। पहले महीने केवल तीन सौ रुपये का काम आया था। इस महीने आठ सौ का। दुकान पर दर्जी दो से तीन कर देने पड़े। माया दूसरे दिन जा कर दुकान का हिसाब देख लेती। माया दुकान के

सम्बन्ध में बहुत से सैनिकों तथा अन्य अफ़सरों के सम्पर्क में आई। उसने सदैव यही अनुभव किया कि प्रत्येक स्थान पर पुरुष उसकी ओर एक जैसी दृष्टि से ही देखते हैं। मानों वह रसगुल्लों की एक प्लेट है जिसमें सबका साँभे का अधिकार है। माया वह लालच भरी दृष्टि पहचानती है।

गत दो मास में राजन केवल एक दिन के लिए देहली आया था। वह भारत से बाहर अपने काम के सिलसिले में गया है। राजन के दो तीन पत्र माया को मिले हैं जिसमें शरमाये हुए संकुचित नवयुवक की भावनायें हैं। राजन की अनुपस्थिति में माया को एक सुविधा मिली है, कि वह अपने अन्तर को टटोल ले कि राजन के प्रति उसकी भावनाये गहन हैं, या केवल एक उद्दाम आकर्षण मात्र ही हैं।

सेठ धनपति से माया अभी तक अछूती ही बची है। वह जब जब बातचीत आरम्भ करते हैं तो माया व्यवसाय की बात शुरू कर देती है। इधर काम के बढ़ जाने से माया ने एक 'एंग्लोइंडियन' लड़की अपनी सहकारिणी के रूप में रख ली है। माया ने सेठ साहब को डौरिस को चूमते हुए भी देखा है। डौरिस तो एक ग्रास है सेठ साहब के लिए, उसे किसी समय भी निगल सकते हैं। उनकी पकड़ में माया नहीं आ रही, यही उनके लिए दुःख भरी बात है।

माया काम की व्यस्तता के कारण इधर कुछ दिनों से कमाऊ लड़कियों के होस्टल भी जा नहीं पाई। वह दस-पन्द्रह दिन के बाद उसका चक्कर लगाया करती थी।

मेजर कबाड भी इधर नहीं आया। अनीता देहली आई हुई है। कबाड ने हीरा वजीफदार की तरह अनीता को भी सुभाया था कि वह उससे विवाह कर लेगा। अनीता को उसने ज्योत्स्ना के अस्तित्व का कही भी उल्लेख नहीं किया। माया तो देहली दूसरे दिन ही लौट आई थी, परन्तु कबाड आठ दिन तक वहाँ रहा था। अनीता का गर्भ रह गया था। अनीता ने माया को आकर बतलाया तो न जाने क्यों माया

को आन्तरिक प्रसन्नता हुई। कबाड जो बरसात में भीगी चारपाई की तरह अकड़ा हुआ था, अब सीधा हो जाएगा। अनीता मिस्टर हार्वर्ड की पुत्री है, उसकी रंगों में विदेशी खून है। वह कबाड को ऐसे ही छोड़ न देगी। जब कबाड ने ब्याह से इन्कार कर दिया, तो अनीता ने कबाड के आफिसर कमांडिंग को रिपोर्ट कर दी। तीन दिन में ही आफिसर कमांडिंग ने मामला अपने हाथ में ले लिया और तहकीकात शुरू हो गई। माया का बयान भी लिया गया और माया ने हीरा वजीफ़दार तथा ज्योत्स्ना के विषय में भी बतला दिया।

अनीता अपने भविष्य के लिए अति चिन्तित थी। दो तीन दिन में तहकीकात का निर्णय होने वाला था। कबाड नजरबन्द था। कबाड ने अपने किसी मित्र अफ़सर के हाथ माया को एक पत्र भेजा था कि वह उसके लिए अच्छी गवाही दे। माया ने उत्तर में यही कहा था कि वह सच बोलेगी, चाहे सच कितना कटु भी क्यों न हो। माया जानती थी कि उसके सत्य न बतलाने पर भी सैनिक अफ़सर सत्य जान जाएंगे। फिर कबाड को भी कोई अधिकार नहीं कि वह जिस लड़की को देखे उसी पर दूट पड़े। यदि माया इतनी अनुभवहीन होती, तो शायद वह भी अनीता की तरह कबाड का शिकार होती।

माया ने अपने मन से बहुत युद्ध किया। आखिर वह क्यों सुधाकर का, सेठ साहब का बदला कबाड से ले रही है? अभी तक तो वह कबाड को नचाती रही है। परन्तु कबाड पुरुषों की उस नीच श्रेणी का कीटाणु है जो रोग फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ते।

इस बीच में माया अनीता के पास आती रही। माया वह को सदैव कहती रही, कि कबाड को उसके साथ विवाह करना ही होगा। वह ऐसे ही नहीं बच कर निकल सकता। माया अनीता का हठ देखती तो उसे प्रसन्नता होती। अनीता ने यह भी कहा था—“मैं कोई खिलौना नहीं, खेल लिया और फिर तोड़ फोड़ कर फेंक दिया। मैं नारी हूँ। बच्चे के भविष्य को देखकर मैंने यही निश्चय किया है कि कबाड से ब्याह

करूँगी। मैंने केवल शारीरिक वासना को तृप्त करने के लिए ही कबाड को आगे नहीं बढ़ने दिया था। उसने मुझसे विवाह का वायदा किया था, और मसूरी में ही यह अँगूठी खरीद कर पहनाई थी। साथ में यह भी कहा था कि एक सप्ताह के भीतर भीतर वह मुझे देहली बुलवा लेगा और फिर शादी हो जाएगी।”

माया ने अनीता की पीठ थपथपा दी थी। “तुम ठीक राह पर चल रही हो बहन, यह पुरुष समझते ही नहीं, हँसी हँसी में इनसे क्या से क्या हो जाता है। जिसका दायित्व केवल नारी पर ही रहता है।”

सेठ धनपति भी कबाड की चर्चा में भाग लेते। एक बार माया ने कहा, “सेठ साहब आप ऐसे कितने बच्चों के पिता हैं, शायद आपको याद भी न होगा?”

सेठ साहब खिसिया कर हँसने लगे थे। उन्होंने उत्तर नहीं दिया था। केवल यह कहा था, “कबाड बेवकूफ है, यदि खेलता है, तो ब्याह का आश्वासन क्यों देता है? खेलने वालों को चाहिए किसी तरह अपने पांव ऐसे धरातल पर न रखें कि जिस पर खड़े हों उसी में धंस जाएं।”

माया के मुख पर एक कुटिल मुस्कान खेल गई थी। उसने सेठ साहब के बेडौल शरीर तथा खिचड़ी बालों को देखा और फिर घृणा से मुख फेर लिया। मन ही मन माया हँसी भी थी कि बात ऐसी करते हैं, मानो बीस वर्ष के युवक हों।

कबाड का कमीशन छीन लिया गया। उसे नौकरी से अलग कर दिया गया। जिस दिन उसका फैसला सुनाया गया उस दिन माया भी कबाड से मिलने गई।

“तुम क्यों आई हो?”

“मित्र का हाल चाल पूछने।”

“छिः, तुम्हें मुझे मित्र कहते लज्जा नहीं आती?”

“क्यों? तुम मेरे मित्र नहीं हो?”

“मित्रता तो खूब निभाई तुमने।”

“मैंने तुम्हारे साथ जीवन की सबसे बड़ी भलाई की है।”

कबाड के मुख पर धाव का निशान चमकने लगा। जबड़े फैल गए तिरस्कार भरे स्वर में बोला—“मैं भी तो सुनूँ कौन सी भलाई की है तुमने ? तुम चाहती तो मुझे बचा सकती थी। तुम बयान में कह देतीं कि सात दिन तुम भी वहीं रही तो क्या तुम छोटी हो जातीं ?”

“किस लिए ? तुम्हें बचाने के लिए, सांप को दूध पिलाती कि मौका पाते ही मुझे डस ले।”

“अब क्या करने आई हो, चली जाओ यहां से। बड़ी साध्वी बनती है, सेठ साहब की रखेल ?”

माया का सबसे कमजोर स्थल यही था। लोग सेठ धनपति के साथ उसके अवैध सम्बन्ध को न जाने कैसे सत्य समझ लेते हैं। सेठ साहब की नौकरी जैसे उसकी अपनी शक्ति तथा कार्य कुशलता पर निर्भर नहीं, वह केवल सेठ साहब की रखेल है और उसका अस्तित्व वही है। माया ने क्रोध पर संयम पाते हुए कहा—“तुम्हारे जहर के दांत अभी तक नहीं टूटे ?”

“नहीं, अब तो मेरे ससुर इतने अमीर हैं वह तुम्हें और तुम्हारे सेठ साहब को खरीद सकते हैं।”

“कौन ? मिस्टर हार्वर्ड ?”

“हाँ, सारे हिन्दुस्तान में उनका व्यापार चलता है।”

“क्या वह अपनी लड़की का ब्याह तुमसे करने को राजी हो गए हैं ?”

“क्यों, उस नाजायज़ बच्चे का बाप कहलाने के लिए कौन तैयार होगा ? तुम्हारा मधुकर ?”

“बच्चा तुम्हारा है, फिर उसे नाजायज़ कैसे कह सकते हो ?”

“कल को तुम्हारा बच्चा भी मेरा होगा, क्यों ?”

“शटअप, नीच कही का।”

कबाड ‘हो हो’ कर हँसने लगा।

"चली जाओ यहाँ से, गालियाँ बकती है। अब मुझ पर सैनिक होने का कोई प्रतिबन्ध नहीं। मुझे तो केवल एक ही दुःख है कि मैंने तुम्हें कैसे छोड़ दिया।"

माया ने अपनी चप्पल उतार ली। कबाड ने उसकी कलाई पकड़ ली और कमरे से बाहर निकाल दिया।

माया की इतनी बेइज्जती कभी न हुई थी। कबाड महानीच है। अच्छा हुआ इसकी नौकरी छूटी। माया घोर अपमान में जलती भुनती किसी तरह घर पहुँची। इस सर्दी में भी उसने अपना सिर ठंडे पानी के नल के नीचे रख दिया।

उस रात माया सोचती रही यदि वह सेठ के यहाँ नौकरी न करके किसी सरकारी दफ्तर में काम करती तो शायद उसकी इतनी बदनामी न होती। उस पर इतने छीटे न पड़ते। माया को क्या आवश्यकता थी कि कबाड को समझाने चली थी। वह नीच है, नीच रहेगा, उसे कौन सुधार सकता है। माया उस रात सोई नहीं। सुबह सुबह अखबार आया तो उसमें उसने कबाड और अनीता के ब्याह के बाद की तस्वीर देखी, नीचे लिखा था—अपूर्व प्रेम-विवाह। माया का शरीर जलने लगा। जैसे सारे शरीर में काँटे चुभ रहे हों। ओह ! वह तो संसार को सुधारने जा रही थी। संसार उसके सुधारने से ही जैसे सुधरेगा। सब धोखा है। यह जीवन केवल अपने निजी अस्तित्व को ले कर ही है, शेष सब झूठ है। साया मत ही मन कुलबुलाती अपने दफ्तर चली गई।

मेजर कबाड के विवाह को लगभग एक माह हो गया है। इस मास में सेठ धनपति जरा संयम से रहे हैं। अब माया से मौके बे मौके बात करते उन्हें एक प्रकार की भिन्न सी होती है। बातों ही बातों में माया ने उन्हें सुना दिया था—‘जब लोग आगे बढ़ते हैं, तो कहीं न कहीं उनकी बदनामी होती है, कहीं न कहीं वह फिसलते हैं। ऐसे गहरे गिरते हैं, जहाँ से ऊपर उठना कठिन होता है।’

सेठ धनपति ने भी ढीठों की तरह हँसते हुए कहा था, ‘कबाड को यह सौदा मंहगा नहीं रहा, पत्नी भी सुन्दर मिल गई साथ में लाखों रुपयों का जमा हुआ व्यवसाय मिल गया। नौकरी में क्या रक्षा है? अब वह चाहे तो एक और अनीता से ब्याह कर सकता है।’

माया के तन बदन में आग लग गई थी। यह पुरुष भी कितना घृणित होता है। सेठ धनपति जैसा पुरुष, जो दुनिया को अच्छी तरह देख भाल चुका हो, खेल खाल चुका हो, ऐसा कहे माया मन ही मन घबराती भी थी। उसका जीवन बिल्कुल एकाकी हो चुका था, नीरस, जैसे रेत का एक बहुत बड़ा मैदान। माया भी नारी है। उसमें भी नारी की समस्त दुर्बलताएं हैं। आकांक्षाएं हैं। माया ने भी सोचा था एक दिन जीवन में घर बनाएगी, गृहस्थी जमाएगी, स्नेहमयी और कर्तव्यपरायणा पत्नी बनेगी। माँ बनेगी। वह कुछ भी न बन सकी। वे स्वप्न के स्वप्न रह गए। यथार्थ उससे भिन्न है। अब जीवन में हर कदम पर उसे भय है। वह डरती रहती है। अधिक से अधिक कामकाज से सेठ धनपति का ऋण चुकाने के लिए वह चिन्तित रहती है। इसी आशा और निराशा के दोराहे पर उसे राजन एक आत्मीय लगा था। वही राजन जिसका—इतने दिनों से कोई पत्र नहीं आया। माया के मन में एक दर्द उठता है।

सेठ धनपति के साथ माया ने पार्टी आदि में आना जाना छोड़ दिया है। वह सोचती, कहीं भी गई तो समाज में उसकी चर्चा होगी। परन्तु

समाज से डर कर वह नहीं भाग सकती । उसे समाज का मुकाबिला करना है । भाई को विलायत न भी भेजती तो क्या होता ? शायद वह किसी फ़र्म में क्लर्क हो जाता । अब वहाँ उसका जीवन बन जाएगा । माया ने संसार को चुनौती दी है । तो अब वह उस चुनौती का मूल्य चुकाएगी ।

माया अनमनी सी बैठी थी । आकाश पर बादल छाए हुए थे । सर्दी में बादल बहुत अच्छे नहीं लगते । ठंड बढ़ जाती है और वातावरण में गहरी उदासी भर जाती है । माया शाल ओढ़े बैठी अपने भविष्य के विषय में सोच रही थी । क्या होगा ? वह कैसे जीवन काटेगी ? देहली के इस चार वर्ष के जीवन में उसने देखा है कि ऐसे लोग बहुत से मिलते हैं जो उसके सहारे से जीते हैं । रूपा ले जाते हैं । और भी जिस सहायता की आवश्यकता होती है लेते रहते हैं । परन्तु, इस समय वह शहर भर में देख ले तो उसका अन्तरंग निराशा होती है । वह बातचीत भी करेगा, हँसी दियेगी भी करेगा, पत्र लिखेगी भी नहीं निभायेगा । सखी कोई नहीं । कला — कला तो सीखेगी ही, परन्तु धोखे में रखती आ रही है । कला को पता चलेगा तो वह बहुत झिगड़ेगी । माया पर भी झुल्लाएगी । माया अपने विचारों में ही बैठी थी कि डाकिय पत्र दे गया । पत्र भारी था लिखावट माया की पहिचानी हुई न थी । उसने पत्र खोला ।

बम्बई

माया जीजी,

मैं जानता हूँ, मुझे तुम्हें जीजी कहने का अधिकार छिन गया है, तुम शायद यह पत्र पाकर हैरान होगी, पत्र के टुकड़े-टुकड़े कर दोगी ।

मैं इस आशा से पत्र लिख रहा हूँ कि तुम एक बार तो अवश्य पढ़ोगी ।

उस दिन जो मैं होटल से भागा—तो मैंने स्टेशन पर जाकर साँस ली । वह तीन चार दिन जो तुम बम्बई में रहीं, मैं स्टेशन पर

मारा मारा फिरता रहा। जीजी, मैं तुम्हारे सामने आने में केवल एक बात के लिए भिन्नता था, वह सिर्फ यह ही नहीं कि मैं चम्पा को भगा लाया हूँ। चम्पा का भगाना तो एक छोटी सी घटना है। जीजी, मैं तुम्हारे सामने आने में केवल तुम्हारे शक्तिशाली व्यक्तित्व के लिए ही साहस इकट्ठा नहीं कर पाता था। तुम मुझ पर चिल्लाती न, चीखतीं भी नहीं। तुम्हें किसी दूसरे व्यक्ति को मेरे लिए बुलाने की आवश्यकता नहीं थी, जीजी। तुम भावुक हो, जहां तक कर्त्तव्य तुम्हें भावुक होने की स्वतंत्रता देता है। अन्यथा तुम कर्मवादी हो। मैं भी तुम्हारी तरह कर्मवादी हूँ, परन्तु बहुत गिरा हुआ हूँ। तुम्हें जीजी, कोई आकर्षण, कोई लोभ नहीं डिगा सकता। पर मैं तो पतित हूँ।

मैं अपनी सफाई नहीं दे रहा हूँ, केवल अपने पतन की बात कहना चाहता हूँ। तुम भी मेरे इस तरह एकाएक आ जाने को पतन का नाम ही दोगी। मेरी जेब में पैसे थे। रुपये नाच रहे थे, नहीं, डंक मार रहे थे, कही उन्हें खर्च करूँ। कला से ब्याह करवाने का सबसे बड़ा आकर्षण मेरे लिए पैसा ही था। वह मुझे मिल गया था। मैंने सोचा था विलायत जा कर एक 'डिग्री' ले आऊँ, धन कमाने में, अपनी सब आकांक्षाओं को कार्यान्वित करने में 'डिग्री' सहायता देगी। भावी को मैं मानता हूँ। रुपये की बात सोचता, मैं आश्रम पहुँचा था। वहाँ चम्पा को देख कर मैंने एकदम निश्चय बदल लिया कि मैं जल्द ही चले दूँगा। वह रात मैंने घर में नहीं, देहली के होटल में काटी। चम्पा भी दूसरे दिन सवेरे मुझे मिली। मेरे एक ही निमन्त्रण पर वह तैयार हो गई थी। वह एक बार भी कहती कि वह नहीं आएगी, तो शायद मैं ही डाँवाडोल हो जाता। वह आ गई। भावी हमें बम्बई खेँच लाई।

जीजी, चम्पा को आश्रम से मैं लाया हूँ, उतने का गुनहगार मैं हूँ। पति के घर से उसे आक्रमणकारी उठा कर ले गए थे। एक बार वह उनके द्वारा भ्रष्ट हो चुकी थी। पति वापिस ले गया और फिर घर से निकाल दिया। जानती हो जीजी, नारी की वासनाएं भड़क जातीं

हैं तो वह किसी भी पुरुष के साथ जाने में हिचकिचाती नहीं। यह मेरी ओर से सफाई न समझना, मैं बिल्कुल तथ्य लिख रहा हूँ।

इधर मेरे पास पैसा कम हो गया है। जितना था, प्रायः वह खर्च हो चुका है। मैं चम्पा को शराब पीने से मना करता हूँ, परन्तु उसे इतनी बुरी लत पड़ गई है कि वह किसी तरह मानती ही नहीं। रोज़ के दस पन्द्रह रुपये की शराब उसे चाहिए। होटल वालों का ऋण हमारे सिर हो गया है।

मैंने किसी तरह अपनी घड़ी बेच कर वह ऋण चुकाया है। मैं कहता हूँ, चलो लौट चलें। परन्तु वह मानती नहीं। कहती है, एक बार जो आ गए, सो आ गए, अब मैं वापिस तो नहीं जाऊँगी। होटल भी नहीं छोड़ूँगी। चम्पा का जीवन अब मुझ से बड़ा भिन्न हो गया है। मैं बम्बई की गलियों में मारा फिरता हूँ—वह होटल में रहती है।

जीजी, यह मेरी भूल थी, इसे मैं एक बार नहीं लाख बार स्वीकार करता हूँ। मैं उस भूल के लिए प्रतिकार करने को भी तैयार हूँ। चम्पा मुझसे कोई सम्पर्क नहीं रखना चाहती। उसका अपना जीवन है वह उसी में व्यस्त रहना चाहती है। मैं उसके जीवन में जाना भी नहीं चाहता। शायद कसूर मेरा है जो वह इतनी पतित हो गई है। यदि मैं ही उसे लाकर यहां न पटकता तो शायद वह ऐसी न होती। होटल का मैनेजर अब उसका संरक्षक है। वह उसके इशारों पर नाचती है। मैनेजर उससे पैसे नहीं लेता, होटल की आमदनी बढ़ाने में वह सहायता करती है।

जीजी, मैं ऐसे जीवन से ऊब गया हूँ। शराब भी पीकर देखी है। कुछ नहीं बनता। बहुत पी है। सारा दिन पीता रहा हूँ। चम्पा को छोड़ ऐली से मेल जोल बढ़ाया, वह भी कुछ नहीं। ऐसा जीवन जो हम रजत पट पर देखते हैं, वह वास्तविक जीवन से कितना भिन्न है! वास्तविक जीवन—जिसमें शान्ति है, सेवा है, स्नेह है, कर्तव्य परायणता है, इस जीवन से भिन्न है जीजी। मेरा मन तो भर गया है इस जीवन से।

मुझे में साहस नहीं हो रहा कि मैं कला के विषय में पूछूं वह कहाँ है, उसका क्या हाल है। मुझे ऐसी भोली पत्नी मिली थी, परन्तु उसके गुणों का आदर मैं न कर पाया। अब स्थान स्थान पर ठोकें लगने के बाद जान पाया हूँ, वह कैसी थी। पहले मैं उसके सीधेपन से चिढ़ता था, अब जाता था।

जीजी, मेरा दिल टूट गया है। मैं होटल वापिस भी जाता हूँ तो चम्पा मुझे निकाल कर बाहर करती है। मेरे पास भी जितने रुपये पैसे थे उनमें बहुत से चम्पा ने स्वयं निकाल लिये, कुछ मैंने हाथ से दिये हैं। मैं तुम से रुपये मांगने के लिए यह भूमिका नहीं बांध रहा हूँ। मैं केवल अपने इस संघर्ष का निदान चाहता हूँ, जीजी।

जीजी, तुममें अपूर्व शक्ति है। तुम सदैव दूसरों को सुभाती रही, उन्हें क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये। जीजी! क्या तुम मुझे नहीं सुभाओगी? शायद, तुम चम्पा को भगा लेने पर मुझे इतना नीच न समझती होवो जितना अब जब मैं कायर निकला, तुम्हें देख कर होटल छोड़ कर भाग गया।

जीजी, मेरे भैया भी कायर हैं। उनकी राय मैं लेना चाहूँ, तो शायद मेरा मुख भी न देखें। देहली में तो नारी के मैंने बहुत से रूप देखे हैं, परन्तु बम्बई में तो कइयों से परिचय हुआ है। मैं एक नारी में भी तुम जैसी सहनशक्ति नहीं पाता, साहस नहीं पाता। मैं तुम्हारी बात सोचता हूँ तो श्रद्धा से सिर झुका लेता हूँ।

वैसे मैं सोचता हूँ जीजी कि तुम्हें मेरे सिर झुकाने या न झुकाने से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

मैं कोई अनुरोध नहीं करता, केवल यही चाहता हूँ कि मैं अन्धकार में भटक रहा हूँ, तुम कोई राह सुझा दो। मैं तीन दिन तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करूँगा, नहीं मिला तो अन्यत्र कहीं चला जाऊँगा। जो कर सका कर

लूंगा। यह धमकी नहीं है जीजी, केवल मेरी मानसिक अवस्था का आवेग है।

तुम्हारा कृपाभिलाषी
सुधा

माया के ओंठ घृणा से तिरस्कार से सिकुड़ गए। बाहर बादल घिरे हुए थे। उसने बाहर देखा। उसका मन उदास हो गया, वह करुण हो उठी, आँखों के कोरों से आंसू निकल आए। वह कला के विषय में सोच रही थी।

माया सोचने लगी क्या उत्तर दे। कागज कलम लेकर बैठी।

सुधा,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। मैं तुम्हें क्या सलाह दे सकती हूँ? मेरी सलाह केवल यह है कि तुम पहली गाड़ी में बैठ कर अलीगढ़ पहुँच जाओ। चार दिन हुए कला ने एक नन्हें मुन्ने लड़के को जन्म दिया है। तुम्हारा अलीगढ़ पहुँचना बड़ा आवश्यक है।

हां, याद रखना, कला अभी तुम्हारे विषय में कुछ नहीं जानती कि तुम चम्पा को लेकर भागे थे। अभी भावुकता में आकर अपने पाप धोने मत बैठ जाना। कहीं, रो रो कर अपनी तरफ़ से तुम उसका विश्वास पाने का प्रयत्न करो।

खैर, अब तुमसे मुलाकात बहुत जल्द होगी। मैं भी दो दिन में अलीगढ़ पहुँच रही हूँ।

भगवान तुम्हें सुबुद्धि दें।

माया

पत्र लिख कर माया ने बिन्दिया को बुलाकर डाक में छोड़ने के लिए कहना चाहा। बिन्दिया को एक दो आवाज़ लगाने पर एकाएक उसे ख्याल आया कि उसे तो वह अलीगढ़ भेज चुकी है। पत्र उसे स्वयं ही

डाक में छोड़ना होगा। पत्र भेजने से क्या होगा ? वह तार ही क्यों न भेजे। तार देना ही ठीक रहेगा। पत्र भी भेजेगी और तार भी।

माया ने जल्दी से जूता पहना और बाहर चला गई। तार देने के लिये उसके पांव फुर्ती से चल रहे थे। वह किसी का भला करने जा रही थी, कोई उस पर निर्भर था। माया को दूसरों का काम करने की आदत सी हो गई है। जब काम न होता तो वह एक प्रकार की मानसिक अस्वस्थता का अनुभव करती।

: ६ :

माया अलीगढ़ गई थी। वहाँ से लौटी तो उसका मन प्रसन्न था। उसे एक प्रकार का सन्तोष था कि सुधाकर वहाँ कला के पास पहुँच गया है। बम्बई में घूम घूम कर, धनाभाव से, उसका रंग काला पड़ गया है। देखने पर इतना कमजोर लगता है कि माया को भी सन्देह हुआ था शायद वह बीमार रहा है। कला ने तो दिन में दस बार पूछा था, 'क्या तुम बीमार थे'। हर बार वह हँस कर टाल देता।

माया ने कला के पुत्र को देखा, सुन्दर गोल गोल बच्चा, गोरा और लाल, जैसे पक्का रस भरा फल हो। बच्चे को देख माया के मन की मातृत्व की सब भावनाएं एकाएक भड़क उठी। उसे मन ही मन कला से ईर्ष्या सी हो उठी। बार बार उसके मन में यही विचार आ रहा था—'काश, उसका भी घर होता, पति होते, वह भी कुछ कर पाती। यह नीरस जीवन—जिसमें कुछ नवीनता नहीं। राजन को माया ने, डूबते को तिनके का सहारा समझा था—वह भी चला गया। कोई ऐसा सहारा नहीं, जिसे वह अपना कह सके। माया मन ही मन इतनी क्षुब्ध हो गई कि उसका एक मन हुआ यमुना में छलांग लगा दे। परन्तु उसने ऐसा कुछ भी नहीं किया। वह अपने घर लौटी, होस्टल लौट आई। उसका जीवन फिर अपने ढंग से चलने लगा।

इधर राजन का कोई पत्र नहीं मिला था। माया ने मन ही मन पक्का निश्चय कर लिया था, वह राजन को भूल जाएगी। पुरुष धोखा देता है, वह उसका धोखा सहती आई है। इतनी ठोकरें खाने पर भी, बार बार लूटे जाने पर भी, वह फिर अपने को लुटती जाने देना चाहती है। यह कैसी विडम्बना है ? शायद यही नारी का स्वभाव है।

माया को शहर के जीवन से, इसके दाँव पेचो से घृणा हो गई थी। काश ! इस समय उसे सेठ धनपति का ऋण न देना होता तो वह गाँव के उन्मुक्त वातावरण में चली जाती। चाहे उसे गाँव में जाकर केवल लड़कियों को पढ़ाना पड़ता, वहाँ इतने रुपये भी न मिलते। रुपये की अब उसे अधिक चिन्ता भी न थी। रुपया, कीमती साडियाँ, आभूषण उसे लगता था, जैसे जी का जंजाल है। घर पर रहने वाली स्त्रियाँ सोचती हैं काश उनके पास नौकरी होती। वह भी अपनी नौकरी पेशा बहिनों की तरह स्वच्छन्द होती। माया बहुत सी महिलाओं के सम्पर्क में आई है, जिन की ऐसी इच्छा है, कि वह भी काम करें। वह अपना निजी व्यक्तित्व का विकास चाहती हैं, अपने निजत्व को बंटाना चाहती हैं। वह नहीं जानतीं यह सब भूठ है, मिथ्या भावना है। इस जीवन की शोभा और आब मोम के मोतियों की तरह है, जो देखने में अतीव सुन्दर लगते हैं। व्यवहार में लाने से पता चल जाता है, उनमें कुछ भी नहीं, वह पिघल कर मोम की तरह बन जाते हैं।

माया सोचती और घंटों सोचती। वह पच्चीस वर्ष की होने को है। शायद ऐसे ही वह अपने स्कूल की एक अध्यापिका मिस स्मिथ की तरह बिना घर बार के रह जाएगी। माया सोचती, वह किसको दोष दे। इस परिवर्तित समाज को, अपनी परिस्थितियों को या अपनी आकांक्षाओं को जो मचल मचल कर उसे कहीं का नहीं रखतीं। वह घर से केवल जीविका कमाने के लिए निकली थी, बाहर निकल कर उसकी आकांक्षाएं सातवें आसमान पर चढ़ने लगीं। वह अनुभव करने लगीं... जीवन में जो सुन्दर है, अच्छा है, उससे उसके घरवाले क्यों

वर्चित रहें। केवल यही सन्तोष की बात है कि उनकी स्थिति सुधारने में वह सफल हुई।

माया की मानसिक परेशानी से उसे शारीरिक कमजोरी अनुभव होने लगी। जनवरी के आरम्भ में तो वह खाट पर पड़ गई। उसका मुख पीला हो गया, मानो उसमें रक्त की एक बूद न हो। उसका कर्म-वाद सब एक ओर धरा रह गया।

आज धूप बिल्कुल न निकली थी, सर्दी काफ़ी थी। वातावरण शान्त और निष्ठुर था। माया अपने बिस्तर में तकिये के सहारे बैठी थी। सेठ धनपति अभी अभी एक डाक्टर को लेकर आए थे। वह डाक्टर माया को देख गया है। उसने केवल यही कहा है कि माया को शारीरिक कमजोरी है। डाक्टर को विदा करके सेठ साहब माया से बोले थे, 'तुम चिन्ता न करो माया, मैं तुम्हारा इलाज करवाऊंगा। तुम्हें जल्दी स्वस्थ हो जाना चाहिए। तुम्हारी बीमारी से फ़र्म का काम रुका पड़ा है। पिछले एक सप्ताह में घाटा ही रहा है।'

माया मौन रही थी, उसने उत्तर नहीं दिया था। अपनी फ़र्म के सारे सौ-सेठ साहब उसके स्वास्थ्य की मंगलकामना करते हैं। ओह ! वह बीमार है, तब भी इतना घृणित, स्वार्थी विचार। माया अपने भविष्य के विषय में सोच रही थी, जो इतना अन्धकारमय था। सेठ साहब चले गए थे। बीमार माया (१) पास बैठने का उनको कोई मोह था।

माया के स्वास्थ्य में कोई सुधार न हुआ था। वह बिस्तर पर लेटी रहती। पल पल क्षण क्षण वह घुलती रहती। बार बार उसके मन में यही आता—लोग मुझे घृणित समझते हैं, सेठ की रखेल समझते हैं। अभी तक उसका शरीर पवित्र है, आत्मा कलुषित नहीं। पर इस सब पर विश्वास कौन करेगा? क्या सभी उस जैसी लड़कियाँ, जीवन ऐसे ही व्यतीत करती हैं? उनके जीवन में भी ऐसे ही क्षण आते हैं, जब वह सहारा चाहती है। माया की माँ ने उसके पास दिल्ली में आने से इन्कार कर दिया है क्योंकि छाया के वच्चा होगा। अभी कुछ दिनों की देर है, फिर भी छाया की देखभाल आवश्यक है इसी लिए वह माँ के पास आई है। माया का केवल इतना ही अस्तित्व है कि वह माँ को रुपया भेजती रहे! इस से अधिक कुछ नहीं!!

माया सोच ही रही थी कि अब उसका जीवन ऐसे ही चलेगा कि एकाएक राजन ने प्रवेश किया। साथ में एक प्रौढ़ा भी थी, सफेद खादी की धोती पहने थी।

राजन ऊँचे स्वर से बोला—“माँ, यह माया है, तुम्हारी होने वाली बहू।”

माया अपने बिस्तर से उठना ही चाहती थी कि राजन की माँ बोली—“लेटी रहो बेटी, तुम बीमार हो, क्यों तकलीफ़ करती हो।”

माया का दिल बुरी तरह से धड़क रहा था। माथे पर पसीना आ गया था। उसके रूखे लम्बे बाल उलझे हुए थे। उसे यह सब स्वप्न की तरह लग रहा था।

राजन की माँ बोली—“बिन्दिया को बुला लिया जाए, सामान बांधना है, कल सुबह आठ बजे की गाड़ी लेनी है।”

माया को कुछ कहने का अवसर इस बार भी नहीं दिया गया। राजन स्वयं ही बोला—“माया, तुम कोई बात नहीं पूछोगी? मैं इतने दिनों तक केवल तुम्हारे ऋण चुकाते आया हूँ, प्रबन्ध करता रहा। सब रुपया लेकर मैं और माँ सेठ साहब के पास गए, उनसे मिले। उन्होंने रुपया

